

ब्रह्मचर्य

अखंड मंडलाकार

कल्पतरु अनिल एस ठक्कर



BlueRoseONE.com
Stories Matter

New Delhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS

India | U.K.

Copyright © Kalptaru Anil S Thakkar 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7310-590-1

Cover design: Daksh
Typesetting: Tanya Raj Upadhyay

First Edition: November 2025

समर्पण

यह पुस्तक उन सभी को समर्पित है,

जिन्होंने अपने जीवन की परवाह किए बिना इन sacred ग्रंथों की रक्षा की।

उन पूज्य ऋषियों, आचार्यों और पुजारियों को, जिन्होंने वेदशालाओं, मंदिरों और घरों में इन मंत्रों और श्लोकों का नित्य जाप कर इस ज्ञान की धारा को जीवित रखा।

यह उन दूरदर्शी राजाओं और मनीषियों के लिए भी है, जिन्होंने उस समय इन गहन रहस्यों का आविष्कार किया, जब मानव को यह भी ज्ञात नहीं था कि पृथ्वी गोल है और सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है।

उपाख्यान

यह सृष्टि कोई एक क्षण की घटना नहीं है। यह एक मंथन है। और हर मंथन में दो ही वस्तुएँ निकलती हैं—अमृत और विष। मंथन तो होगा ही... पर दिशा!"

"ब्रह्मचर्य विरक्ति नहीं है। यह क्रियाशीलता है, जो ब्रह्मांड से समन्वित है।"

"ब्रह्मचर्य जीना है, जैसे वे जीते—न पूर्णता से, पर सचेत होकर। न कठोरता से, पर लय से। न भय से, पर स्वतंत्रता से।"

लेखक द्वारा

भूमिका

आत्मन,

कभी-कभी हमें लगता है कि हमारे प्राचीन ग्रंथ, हमारी कथाएँ और हमारे अनुष्ठान केवल बीते हुए समय की धूल हैं—विस्मृत मिथक और खोखली परंपराएँ, जिनका हमारे आधुनिक जीवन से कोई संबंध नहीं है। हम सोचते हैं कि 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ सिर्फ एक कठोर नियम है, 'यम' का अर्थ केवल मृत्यु, और 'अवतार' केवल कहानियों के पात्र हैं। लेकिन क्या हो, अगर हम शब्दों को फिर से सुनना शुरू करें? यह पुस्तक उस मौन को तोड़ने का एक प्रयास है। यह आपको विश्वास दिलाने के लिए है कि भारत का आध्यात्मिक ज्ञान सिर्फ दर्शन नहीं, बल्कि विज्ञान है—चेतना का विज्ञान, लय का विज्ञान, जीवन का विज्ञान। इस यात्रा में, हम देखेंगे कि: राजा केवल सिंहासन पर बैठा व्यक्ति नहीं था, बल्कि धर्म की व्यवस्था को चलाने वाला एक गृहस्थ था, जो यह जानता था कि क्या दिया जाना चाहिए और क्या त्यागना है। नचिकेता के पिता वाजश्रवस, गायों के दान से यह समझाते हैं कि प्रकृति की लय को पढ़ना ही जीवन का सबसे बड़ा ज्ञान है। गाय केवल एक पशु नहीं है, बल्कि पृथ्वी की आवाज है, ब्रह्मांडीय नियमों की एक जीवित पाठ्यपुस्तक है, जिसकी चाल और मौन में सृष्टि के नियम छिपे हैं। नचिकेता की कथा मृत्यु का संदेश नहीं है, बल्कि गुरु कण (चेतना के बीज) की उस पवित्र यात्रा का रूपक है, जो गर्भ में प्रवेश कर, धैर्य के साथ तीन दिन उपवास करके, और 21 आंतरिक बाधाओं को जीतकर एक नए जीवन का निर्माण करता है। परशुराम कोई रक्त-पिपासु योद्धा नहीं, बल्कि गुरु कण की उस ऊर्जा के प्रतीक जो सटीकता से मार्ग तराशती है, रूप को गढ़ती है और आत्मा के लिए द्वार खोलती है। अवतार केवल विष्णु के दिव्य रूप नहीं हैं, बल्कि जीवन के विकास के 24 चरण हैं—मत्स्य से लेकर कल्कि तक—जो हमारे शरीर और चेतना में लगातार घटित होते हैं। हर नया जन्म एक 'कल्कि' है, जो पिछली पीढ़ियों की स्मृति लेकर आगे बढ़ता है। यह पुस्तक आपको

यह बताएगी कि ब्रह्मचर्य कोई निष्क्रिय संयम नहीं है, बल्कि एक सचेत और सक्रिय जीवन-शैली है। यह हमें सिखाती है कि हमारी हर श्वास, हमारा हर विचार, और हमारा हर कर्म एक 'गुरु कण' है, जिसे सही दिशा और लय में प्रवाहित करना ही हमारी सबसे बड़ी शक्ति है। यह पुस्तक केवल पढ़ने के लिए नहीं है, यह याद करने के लिए है। यह उस खजाने को फिर से खोजने के लिए है जो आपके भीतर ही दबा हुआ है।

लेखक का परिचय

कल्पतरु अनिल शशिकांत ठक्कर

एक ऐसे युग में जहाँ प्राचीन ज्ञान अक्सर खो जाता है या विकृत हो जाता है, लेखक एक ऐसे साधक हैं जिन्होंने सत्य की गहराई में उतरकर इन छिपे हुए रहस्यों को पुनर्जीवित किया है। वर्षों तक पूरे भारत में यात्रा कर, उन्होंने उपनिषदों, पुराणों और इतिहास को एक नए और प्रासंगिक दृष्टिकोण से देखा है। अपनी अन्य कृतियों, जैसे "Man and Law of Planet Earth", "Sun and Dance of Shadow", "The Transformation" और "Union the Bliss" के माध्यम से, वे पहले ही चेतना के गूढ़ विज्ञान पर प्रकाश डाल चुके हैं। "ब्रह्मचर्य : अखण्ड मण्डलाकार " उनकी एक और क्रांतिकारी पुस्तक है, जो हमें यह समझने में मदद करती है कि हमारी सबसे बड़ी शक्ति हमारे भीतर ही समाहित है, बस उसे सही दिशा देने की आवश्यकता है।

अनुक्रमणिका

समर्पण	iii
उपाख्यान	v
भूमिका	vii
लेखक का परिचय	ix
प्रास्ताविक	1
ब्रह्मचर्य: अखण्ड मण्डलाकार	2
पुस्तक का विवरण	129

प्रारम्भिक

क्या ब्रह्मचर्य केवल एक कठोर नियम है? क्या यह सिर्फ जीवन की स्वाभाविक इच्छाओं का दमन है, जो हमें वैराग्य और एकांत की ओर ले जाता है? सदियों से, हमने इसी परिभाषा को अंतिम सत्य मान लिया है। हमारे पूज्य ग्रंथों के गहरे और वैज्ञानिक सूत्र, जो जीवन के सबसे बड़े रहस्यों को प्रकट करते थे, वे केवल सतही नियमों में सिमट गए। शब्दों का मूल अर्थ खो गया। 'यम' केवल मृत्यु बन गया, और 'ब्रह्मचर्य' केवल विवाह से बचना। इस एकतरफा समझ ने भारतीय अध्यात्म के सबसे शक्तिशाली और क्रियाशील सिद्धांत को एक निष्क्रिय प्रथा में बदल दिया। यह पुस्तक उस खोए हुए ज्ञान को फिर से जगाने का एक विनम्र प्रयास है। यह कोई धार्मिक उपदेश नहीं, बल्कि चेतना की एक यात्रा है—उस वैज्ञानिक सच्चाई की खोज है जो हमारे भीतर, हमारी जीवन ऊर्जा के सबसे सूक्ष्म कण में छिपी है। हम जानेंगे कि ब्रह्मचर्य कोई त्याग नहीं, बल्कि एक परिष्कृत जीवन शैली है जो सृजन, चेतना और उद्देश्य की कला है। यह आपको अपने भीतर छिपे उस खजाने से परिचित कराएगी, जिसे हम "गुरु कण" कहते हैं—वह बीज जो जीवन और मुक्ति दोनों का पथ दिखाता है। नचिकेता और यम की कथा में छिपे गर्भाधान के रहस्य से लेकर, महाभारत के पांडवों के पांच तत्वों वाले जीवन तक, और हमारे त्योहारों में निहित ब्रह्मांडीय लय तक—यह पुस्तक आपको उन सभी जीवित संकेतों से जोड़ेगी जिन्हें हमारे ऋषियों ने पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा था। यह एक निमंत्रण है—अतीत की कथाओं को मात्र कहानी की तरह नहीं, बल्कि एक मार्गदर्शक की तरह समझने का। यह सीखने की नहीं, बल्कि याद करने की यात्रा है। याद करने की कि हम कौन हैं, हमारी ऊर्जा का वास्तविक स्रोत क्या है, और हम उस ऊर्जा को कैसे संचालित कर सकते हैं ताकि हमारा जीवन भी सृष्टि की तरह ही लयबद्ध, पवित्र और क्रियाशील बन सके। तो आइए, इस यात्रा पर चलें, जहाँ ब्रह्मचर्य का अर्थ नियंत्रण नहीं, बल्कि स्वतंत्रता है। जहाँ मौन निष्क्रियता नहीं, बल्कि एक गर्भ है—प्रवेश की प्रतीक्षा में।

ब्रह्मचर्य: अखण्ड मण्डलाकार

"शुभास्ते पंथानः सन्तु"

उपनिषदों के दृष्टिकोण से धर्म के छिपे हुए सूत्र

चातुर्मास का मौन और एक प्रकट सत्य

चातुर्मास—मानसून के चार महीनों—एक ही स्थान पर ठहरने का निर्णय। और अपने आध्यात्मिक जीवन की गहराई से समीक्षा। वर्षों की यात्राओं में भारत के कोने-कोने में घूमकर अनगिनत साधकों से भेंट की, प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया और गहन संवादों में भाग लिया। लेकिन इस बार कुछ अलग हुआ।

वर्षा की शांति में एक तीव्र अनुभूति हुई—कि हमारे अधिकांश आध्यात्मिक ग्रंथों को हमने या तो गलत समझा है, या अधूरे रूप से ग्रहण किया है।

बहुत-सी शिक्षाओं की व्याख्या समय के साथ बिगड़ गई है—कभी अनजाने में, तो कभी जानबूझकर। इन विकृतियों से एक ऐसा विचार-जाल बना है जो अक्सर शिक्षा के मूल भाव से भटकाता है। कोई नया साधक जब इन ग्रंथों में प्रवेश करता है, तो वह भ्रमित हो सकता है—जैसे सत्य की खोज में किसी भूल-भुलैया में भटक रहा हो। कुछ लोग तो किसी श्लोक या मंत्र को अपने निजी दृष्टिकोण से पकड़ लेते हैं, और उसी को अंतिम सत्य मानकर उसकी रक्षा में उतर आते हैं।

इस चातुर्मास (वर्षा वास) के समय एक विशेष क्षण आया—गुरु पूर्णिमा का। यह वह दिन है जब हम अपने गुरु का सम्मान करते हैं। उस दिन एक साधक ने मुझसे पूछा, “हम इस दिन गुरु के दर्शन क्यों करते हैं?” मैंने उत्तर दिया कि यह कालखण्ड ऊर्जा की दृष्टि से अत्यंत विशेष होता है। प्रकृति स्वयं रूपांतरण की स्थिति में होती है। पारंपरिक

मान्यता के अनुसार, चातुर्मास के समय पृथ्वी "राजस्वला" स्थिति में होती है—जैसे स्त्रियों के मासिक धर्म के दौरान एक गहन सृजनात्मक शक्ति सक्रिय होती है। इस समय ऊर्जा अत्यंत संवेदनशील व प्रभावकारी होती है, और इसका उपयोग सोच-समझकर करना चाहिए। गुरु के पास जाना केवल भक्ति प्रदर्शन नहीं है—बल्कि ऊर्जा को ब्रह्मांडीय लय से जोड़ने का मार्ग जानने हेतु होता है।

भारतीय अध्यात्म में गुरु शब्द अत्यंत शक्तिशाली है।

गुरु वह है जो अंधकार को दूर करता है, परंतु इसका अर्थ केवल इतना नहीं है। गुरु को "बृहद्" भी कहा गया है—जिसका अर्थ है विशाल, भारी और असीमा। यह मात्र काव्यात्मक नहीं है—बल्कि इस बात का संकेत है कि गुरु हमारी चेतना के केंद्र तक गहराई से जुड़े होते हैं।

आदि शंकराचार्य से जब पूछा गया कि प्रथम गुरु कौन है, तो उनका उत्तर सरल था:

"पिता।"

यह उत्तर सामान्य लग सकता है, परंतु यह गहन सत्य को प्रकट करता है—पिता ही वह प्रथम व्यक्ति हैं जो गुरु कण का बीज देते हैं, जिससे जीवन और चेतना की शुरुआत होती है।

गुरु ब्रह्मा हैं, विष्णु हैं, महेश हैं—और परब्रह्म भी वही हैं।

यह केवल स्तुति नहीं है—यह एक आध्यात्मिक विज्ञान है। प्रथम गुरु संपूर्ण संभावना का स्रोत हैं—वे सृजन करते हैं, पालन करते हैं, और रूपांतरित भी करते हैं। वे जीवन देने की शक्ति रखते हैं, और उसे वापस लेने की भी?

इसलिए जब हमारे शास्त्र गुरु की बात करते हैं, तो वे केवल किसी ज्ञानी शिक्षक की नहीं, बल्कि एक ब्रह्मांडीय बीज—गुरु कण—की शक्ति की बात करते हैं।

अब एक ऐसा विचार साझा करते हैं, जो पहली बार में अटपटा लग सकता है:

क्या हम 'गुरु' शब्द की तुलना 'शुक्राणु' से कर सकते हैं?

आधुनिक सोच को यह असहज या अशोभनीय लग सकता है, लेकिन भारतीय परंपरा में प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से गहन सत्य प्रकट किए गए हैं। यदि हम इस तुलना को खुले मन से देखें, तो यह जीवन और चेतना के विषय में अत्यंत गूढ़ ज्ञान को प्रकट करती है।

गुरु को सृष्टि के मूल बीज के रूप में समझिए—वह चिंगारी जिससे सब कुछ आरंभ होता है।

यह बीज केवल जैविक नहीं है—यह संभावना का प्रतीक है। इसके पीछे एक पूँछ होती है—शक्ति का प्रतीक। वही स्त्री ऊर्जा जो गति, सृजन और परिवर्तन की प्रेरक है।

इस वीर्य कण में तीन बिंदु होते हैं—:

- सृष्टिकर्ता
- पालनकर्ता
- संहारक / रूपांतरणकर्ता

यही सूक्ष्म कण पूरे ब्रह्मांडीय चक्र—जन्म, जीवन और रूपांतरण—को धारण करता है।

गुरु कण (Guru Particle) का अर्थ है वही बीज, जो सभी संभावनाओं को समाहित करता है।

दिशा भी महत्वपूर्ण है।

इस बीज की ऊर्जा की दिशा उसके फल को निर्धारित करती है। यदि यह ऊर्जा नीचे या दक्षिण की ओर जाती है, तो अहंकार, भ्रम और असंतुलन उत्पन्न होते हैं।

यदि यह ऊपर या उत्तर की ओर जाती है, तो बुद्धि, करुणा और समरसता की वृद्धि होती है।

जैसे सूर्य पूर्व दिशा में उदय होकर दक्षिणायन और उत्तरायण की यात्रा करते हैं।

पौराणिक संदर्भ में इसे दो गुरुओं से समझाया गया है:

- शुक्राचार्य – असुरों के गुरु, जो अहंकार और भोग के प्रतीक हैं
- बृहस्पति – देवताओं के गुरु, जो प्रकाश और विवेक के प्रतीक हैं

यहाँ शक्ति केवल ऊर्जा नहीं है, बल्कि गुणक है। वह जिस दिशा में ऊर्जा बहती है, उसी के अनुसार उसका प्रभाव बढ़ा देती है—स्वार्थी ऊर्जा विनाश की ओर जाती है; शुद्ध ऊर्जा विकास और सौंदर्य की ओर।

छिपा हुआ ज्ञान

उपनिषदों की शिक्षाओं और ब्रह्मचर्य के सिद्धांत में आगे बढ़ने से पहले, आइए थोड़ी देर रुकें।

केवल ग्रंथों के शब्दों को नहीं, बल्कि संपूर्ण सृष्टि को देखें—उस संसार को, जिसमें हम जीते हैं।

भारत के प्राचीन ऋषियों के लिए ज्ञान केवल पुस्तकों तक सीमित नहीं था।

वह तो कथाओं में बुना गया, शिलाओं में उकेरा गया, और अनुष्ठानों में गाया गया।

ये केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ नहीं थीं—बल्कि जीवंत संकेत-लिपियाँ थीं, जिन्हें समय के चक्र में मानवता का मार्गदर्शन करने के लिए रचा गया था।

ऋषियों और आचार्यों—इन प्राचीन मनीषियों—को पता था कि समय के साथ स्मृति क्षीण हो जाएगी।

वे जानते थे कि एक दिन मानव मूल्य टूटेंगे, और ज्ञान या तो विकृत हो जाएगा या भुला दिया जाएगा।

उन्हें यह भी आभास था कि आने वाली पीढ़ियाँ शायद धर्म के सूक्ष्म संकेतों को पढ़ने की क्षमता खो देंगी।

इसलिए उन्होंने केवल लेखन नहीं किया—बल्कि स्थापत्य, पुराण और अनुष्ठान के माध्यम से एक संपूर्ण संरक्षण-पद्धति रची।

उन्होंने मंदिरों को केवल पूजा के स्थान के रूप में नहीं, बल्कि ऊर्जात्मक केंद्रों, चिकित्सा स्थलों और ब्रह्मांडीय मानचित्रों के रूप में निर्मित किया।

आज के समय में, जब विनाश की शक्ति कल्पना से भी अधिक प्रबल हो गई है, और जब सत्य को समझना भी कठिन हो चला है—तो यह विश्वास करना कठिन लगता है कि प्राचीन मस्तिष्क इस गिरावट की पूर्वानुभूति कर सकता था।

लेकिन उन्होंने की।

और भय से नहीं—सृजनात्मकता से प्रतिक्रिया दी।

उन्होंने अपने ज्ञान को इस प्रकार कोडबद्ध किया कि वह युगों तक जीवित रह सके।

एक उदाहरण लेते हैं—पुराणों में वर्णित भगवान विष्णु के वराह अवतार की कथा।

यह कहानी कहती है कि जब पृथ्वी प्रलय के जल में डूब गई, तो वराह ने महासागर में गोता लगाया, पृथ्वी को अपने दाँतों पर उठाया, और उसे संतुलन में लौटाया।

बहुतों के लिए यह एक पौराणिक गाथा है—बालकथा या धार्मिक उत्सव का दृश्य।

लेकिन यह उससे कहीं अधिक है।

यह प्रतीकात्मक विज्ञान है।

इस कथा में पृथ्वी केवल वह ग्रह नहीं है जिस पर हम रहते हैं—वह गर्भ है, जीवन की जननी है।

प्रलय का महासागर अराजकता, दबाव और अज्ञात का प्रतीक है।

वराह वह शक्ति है जो उस अराजकता से जीवन को बाहर निकालती है—जो जन्म को सहज बनाती है, जो कठिनाई में से स्पष्टता को जन्म देती है।

परंपरागत विश्वास के अनुसार, प्रसवकाल में वराह की पूजा करने से प्रसव पीड़ा कम होती थी।

शिशु का जन्म निर्विघ्न होता है।

यह अंधविश्वास नहीं था—बल्कि एक ऊर्जा, लय और उपचार की व्यापक समझ का हिस्सा था।

भारत भर में राजाओं और ऋषियों ने मंदिरों को केवल भक्ति के लिए नहीं, बल्कि जनकल्याण के साधनों के रूप में निर्मित किया।

ये मंदिर ग्रहों की गति, शरीर के अंगों, और जीवन के चरणों के अनुसार बनाए गए थे—कहीं हृदय के लिए, कहीं यकृत के लिए, कहीं प्रजनन, वृद्धावस्था या संतुलन के लिए।

प्रत्येक मंदिर एक स्वर-संगति केंद्र था—जहाँ शरीर और मन को फिर से प्रकृति की लय में जोड़ा जाता था।

यह पूरी प्रणाली ब्रह्मचर्य की पारिस्थितिकी का ही हिस्सा थी।

परंतु आज ब्रह्मचर्य को अक्सर केवल संयम में रहने तक सीमित कर दिया गया है।

जबकि सत्य यह है कि—

👉 ब्रह्मचर्य एक पूर्ण जीवनशैली है,

👉 जो सृजनात्मक ऊर्जा के नियमों के साथ तालमेल बिठाती है,

👉 और चेतना को केंद्रित व गहन बनाती है।

जब शरीर असंतुलन में होता है, तो वह अपना स्वाभाविक धर्म नहीं निभा सकता।

चिकित्सा केवल शारीरिक नहीं, आध्यात्मिक भी होती है।

और ब्रह्मचर्य को प्राचीन काल में मूल औषधि माना गया—जो प्राणबल को सुरक्षित रखता है, चित्त को शांत करता है, और आत्मा को गहराई से देखने योग्य बनाता है।

लेकिन समय के साथ—भारत ने आक्रमण झेले,

कथाएँ टूट गईं,

मंदिरों को समझने की दृष्टि बदल गई।

जो कभी जीवंत विज्ञान था, वह धीरे-धीरे अंधविश्वास की संज्ञा में डाल दिया गया।

इतिहास केवल भुलाया नहीं गया—पुनर्लिखा गया।

हर नया शासक धरती के धर्म को दबाकर, अपने अनुकूल सत्य गढ़ने लगा।

परंतु ऋषि नासमझ नहीं थे।

वे जानते थे कि यह होगा।

वे जानते थे कि सत्य छिपा दिया जाएगा, परंतु खोएगा नहीं।

इसलिए उन्होंने अपने ज्ञान को प्रतीकों, कथाओं और ध्वनियों में सुरक्षित कर दिया।

उन्होंने उसे ऐसे रूप में छिपाया, जिसे केवल वही साधक, जो संस्कारवान हो, जो भीतर से तैयार हो, पुनः पढ़ सके।

और अब वह समय है।

हम एक ऐसे युग में हैं जहाँ बाहरी शोर असहनीय है, परंतु भीतर की पुकार प्रबल हो रही है।

लोग केवल उत्तर नहीं—बल्कि अर्थ की खोज में हैं।

उन्हें यह महसूस हो रहा है कि पुरानी कथाओं में कुछ और छिपा है।

कि मंदिर केवल पत्थर की इमारतें नहीं, बल्कि चेतना के नक्शे हैं।

कि अनुष्ठान खोखले नहीं, बल्कि गहरे अनुभवों की कुंजी हैं।

यह अंतराल एक निमंत्रण है।

उपनिषदों और ब्रह्मचर्य की शिक्षा में आगे बढ़ने से पहले,

आइए हम कुछ मूल प्रश्न पूछें:

- वे कौन-से स्तंभ हैं जो ब्रह्मचर्य को उसकी संपूर्ण लय में बनाए रखते हैं?
- कौन-सी अभ्यास विधियाँ, भावनाएँ और अनुशासन उसे पनपने में सहायक होते हैं?
- और हमें कौन-सी सावधानियाँ बरतनी चाहिए?

चातुर्मास केवल ब्रह्मचर्य का पालन करने का समय नहीं—ब्रह्मचर्य बनने का समय है।

यह वह ऋतु है जब प्रकृति शांत होती है, वर्षा भूमि को शुद्ध करती है, और आत्मा को अंतर्मुखी चिंतन के लिए आमंत्रित करती है।

यह भीतर की स्वर-साधना और पुनर्संरखण का काल है।

परंतु ब्रह्मचर्य अकेले खड़ा नहीं रह सकता।
उसे चाहिए—समर्थन, स्पष्टता और सुरक्षा।
तो द्वितीय अध्याय में प्रवेश करने से पहले, आइए हम स्वयं को तैयार करें—
भूमि को समतल करें,
अपने साधनों को तेज करें,
और हृदय को खोलें।
आगे की यात्रा सीखने की नहीं,
बल्कि याद करने की है।
उस ज्ञान से पुनः जुड़ने की,
जो कभी खोया नहीं था—
बस हमारी दृष्टि से ओझल हो गया था।
चलिए, आरंभ करते हैं।

नचिकेता का यम — मृत्यु नहीं, धर्म का प्रवेशद्वार

सतह पर यह कहानी सरल दिखती है। एक युवा बालक, नचिकेता, एक अजीब विनिमय में फँस जाता है—जब उसके पिता, क्रोध में, कहते हैं, “मैं तुझे यम को दे रहा हूँ!” और हमें बताया जाता है कि यह एक श्राप है—मृत्यु को भेजना। लेकिन नहीं... यह दंड की कथा नहीं है। यह एक गहरी परिवर्तन की कहानी है। शब्दों के भीतर छिपा एक पाठ, एक सत्य जो समय की तहों में धैर्य से सही श्रोता के आने का इंतजार करता रहा।

यह क्षण यह कहता है: बालक को मृत्यु के देवता को नहीं दिया जा रहा, बल्कि धर्म, यानी यम को सौंपा जा रहा है।

संस्कृत शब्द “यम” को बहुत ही त्वरित रूप में केवल मृत्यु के देवता के रूप में लैकाओं में परिभाषित किया गया है। किन्तु प्राचीन भाषा में “यम” का अर्थ है धर्म। जब पिता कहते हैं, “मैं तुझे यम को दे रहा हूँ,” वह अपने पुत्र को अँधेरे में नहीं भेज रहे। वह उसे धर्म को समर्पित कर रहे हैं—उस सत्य को जो कभी मरता नहीं। यह पितृत्व की गहरी क्रिया है। वह गुरु कण, चेतना का बीज जो पिता की देह से माँ के गर्भ में प्रवेश करता है, अब उस रूप में वापस आता है—सोचने, प्रश्न पूछने वाले पुत्र के रूप में। और उसी श्रद्धा से, अब उसे पुनः सौंप देते हैं—इस बार बाहरी और आंतरिक दोनों यमों को।

यह कोई साधारण दान नहीं। यह दीक्षा है।

और यह रीति उस यज्ञ से उभरती है—विष्वजीत यज्ञ, जो पिता वज्रश्रवस द्वारा किया जाता है। यह दुनिया पर विजय प्राप्त करने की विधि है—पर युद्ध नहीं, सृजन के माध्यम से। यह गर्भाधान का क्षण है।

नचिकेता अभी सिर्फ बालक नहीं है—वह गुरु कण है—एक वीर्य कण - शुक्राणु, जिसमें तीन बिंदु सिर पर और पूँछ लौ सी होती है। पूँछ शक्ति है, वह शक्ति जो कण को आगे बढ़ाती है।

यह वीर्य यज्ञ के पश्चात् अंडाणु में प्रविष्ट होता है। यह कार्य पवित्र है। जिस शरीर ने गाय के दूध और अमृत का सेवन किया, वह अब अपना बीज ब्राह्मणों को देता है—पर यहाँ समझना महत्वपूर्ण है:

ब्राह्मण केवल पुरोहित नहीं। गूढ़ दृष्टि से, वह जल तत्व (जल के गुण) का वाहक है। और पानी, जैसा ज्ञात है, विचारयुक्त हो सकता है। जो ब्राह्मण, वह धर्म का वाहक है—तरलता में नियम का प्रवाह। ग्रंथों में, ब्रह्मा वीर्य कण के समान माना गया, और ब्रह्म

अंडाणु के रूप में। इन दोनों का मिलन मात्र जैविक क्रिया नहीं—यह ब्रह्मांडीय मिलन है।

तो नचिकेता, गुरु कण, अंडाणु में प्रवेश करता है। उसके चारों ओर लाखों अन्य वीर्य कण होते हैं—उनमें से केवल एक सफल होता है; बाकी विलीन होकर एक कवच बनाते हैं—एक प्रोटीन की दीवार, एक संरक्षण धागा। यही है बाह्य आवरण। इसके भीतर, नचिकेता का विकास प्रारंभ होता है।

तीन दिन तक वह उपवास करता है—not voluntary, बल्कि अस्तित्व की मजबूरी में। वह कुछ नहीं खाता; वह ग्रहण करता है—माँ के शरीर के यम के आधार पर। यह तीन-दिन की अवधि मिथक नहीं, बल्कि वास्तविक है। यही प्रथम अवस्था है बनने की। और तीन के गुणक में चलता है यह चक्र: तीन महीने, छह महीने, नौ महीने, नौ दिन। बालक लय में बनता है, अधीरता में नहीं।

यह है यम।

इसीलिए कथा कहती है कि नचिकेता यम के द्वार पर तीन दिन प्रतीक्षा करता है। यह प्रतीक्षा नहीं—यह गर्भाधान का प्रतिबिंब है। गुरु कण, जो गर्भ में प्रविष्ट हुआ है, वह अब निरभिच्छिन्न मौन, उपवास, और समंजस्य में विश्राम करता है। और जब समय उचित होता है, तो यम प्रकट होते हैं—मृत्यु के देवता नहीं, बल्कि बनने के धर्म की अनुभूति के रूप में।

संवाद प्रारंभ होता है।

“मृत्यु क्या है? मृत्यु के परे क्या होता है? आत्म क्या है? उसे पाने के लिए क्या करना चाहिए?”

ये प्रश्न नचिकेता के मनुष्यता नहीं, बल्कि गुरु कण की चेतना के हैं। यम उपदेश नहीं देते। वह संकेत करते हैं। वह रूपक देते हैं।

नचिकेता सुनता है। वह ग्रहण करता है—not केवल ज्ञान, बल्कि दीक्षा भी। वह वैसे वापस नहीं लौटता। यम उसके भीतर उत्कीर्ण हो जाता है। वह उस बालक के रूप में नहीं रहा जो पूछा था, “तुम मुझे किसे दोगे?”—बल्कि वह आत्मा बन जाता है जो अब जानता है कि वह वास्तव में किसके है: पथ का, व्यवस्था का, उस अनंत ज्योति का, जो मृत्यु में भी न मंद हो।

इस कथा में मृत्यु कभी शत्रु नहीं होती। यम होता है शिक्षक। वही गुरु, जो पहले पिता की देह में एक कण के रूप में था, अब पुत्र में पूर्ण जाग्रति में खिल उठता है।

यह समान ऊर्जा है, जो रूप से रूप में बहती है, बार-बार स्वयं से मिलती है—एक बार राजा, एक बार गाय, एक बार बालक, एक बार वह प्रश्न जो हमें सुबह झकझोरता है और हर अनुष्ठान के पीछे फुसफुसाता है: “तुम वास्तव में किसके हो?”

इस सत्य को स्मरण रहे: जब पिता पुत्र को यम को देता है, वह उसे अंत को नहीं—प्रारंभ को दे रहा होता है। एक शुरुआत, अंधविश्वास नहीं, बल्कि जीवन विज्ञान पर आधारित—उस विज्ञान पर जो तारों को कक्षा में रखता है और गाय के खुर को धीरे से मिट्टी की ओर दबाता है।

तो गुरु कण फिर से यात्रा करता है—निःशब्दता में बोया, आग में जागृत, और यम द्वारा आकारित।

नचिकेता की उत्पत्ति — बीज, ब्रह्म और स्मरण

नचिकेता के यम के द्वार पर खड़े होने से पहले, उसके पहले प्रश्न से पहले, यहाँ तक कि उसके धरती पर चलने वाले बालक बनने से पहले — एक संयोग हुआ। मौन, अदृश्य, पवित्र।

यह दो देहों का मिलन नहीं था। यह गुरु और ब्रह्म का मिलन था। बीज और आकाश का। सजग इच्छा और ब्रह्मांडीय शून्यता का। यह क्षण, जो किसी शास्त्र में दर्ज नहीं, वहीं से असली कहानी शुरू होती है।

उसके पिता, वाजश्रवस, केवल एक संपन्न व्यक्ति नहीं थे। वे सभी आयामों में धनी थे — पदार्थ में, शक्ति में, ज्ञान में, वंश में। वाजश्रवस सूर्य के समान थे — इसलिए नहीं कि वे जलते थे, बल्कि इसलिए कि वे प्रदान करते थे। उनका बीज — उनका गुरु कण — कोई साधारण स्खलन नहीं था। वह पीढ़ियों का संचित तेज था, जो अनुशासन, वंश परंपरा और शुद्ध संकल्प से गुजरा था।

वह गुरु कण जननी के गर्भ में प्रवेश करता है। लेकिन गर्भ को केवल जैविक रूप में मत समझिए। गर्भ है ब्रह्म — न कि देवताओं के सर्जक “ब्रह्मा”, बल्कि ब्रह्म: जो है, जो व्याप्त है, जो पकड़ में नहीं आता परंतु सबको समेटे है। वह अंडाणु, पूर्ण शांति में विश्राम करता हुआ, गुरु कण को स्वीकार करता है। और तभी सृष्टि का आरंभ होता है।

यह प्रजनन नहीं — यह ब्रह्मांडीय क्रिया की पुनरावृत्ति है। यह ऋग्वेद के पहले प्रश्न की प्रतिध्वनि है:

"उससे भी पहले क्या था, जो अस्तित्व में भी नहीं आया था?"

रूप से पहले, शब्द से पहले, यहाँ तक कि सृजन की कल्पना से पहले — केवल आकाश था। ब्रह्म था। और उसी आकाश में गुरु कण प्रविष्ट हुआ।

तो नचिकेता क्या है?

- वह केवल निषेचन का परिणाम नहीं है। वह मांस से ढका हुआ गुरु कण है। वह गर्भ के पवित्र मार्ग से होकर प्रकट होता है — जैसे हम सभी होते हैं। लेकिन जो जन्म लेता है वह केवल शरीर नहीं है। जन्म लेता है एक उद्देश्य, एक धर्मवाहक, एक लय में चलने वाला आत्मा।

- “ब्रह्मा और ब्रह्मः”
- “ब्रह्मा और अंडाणुः”
- “ब्रह्मांडः”

देखिए वह कैसे विकसित होता है — अनियमित रूप से नहीं, बल्कि तीन विशिष्ट आयामों में, जो स्वयं ब्रह्मांड के दर्पण हैं:

- नाभि से नीचे — पैर और प्रजनन अंग: यह है ब्रह्मा ग्रंथि, जहां जीवन की जड़ें स्पंदित होती हैं।
- नाभि से गला तक — हाथ, वक्ष, कंठ: यह है विष्णु ग्रंथि, कर्म, संचार और संरक्षण का क्षेत्र।
- सिर — मस्तक, आँखें, कान: यह है रुद्र ग्रंथि, रूपांतरण, दृष्टि और अंतर्दृष्टि का स्थान।

लेकिन एक चौथा, अधिक रहस्यमय आयाम भी है, जिसे हम अक्सर नहीं बोलते। तुरई । मूल, स्रोत, वह जड़ जिससे वह प्रकट हुआ — उसके पिता।

डोरी कट जाती है, पर छाप रह जाती है। पिता केवल जैविक दाता नहीं, बल्कि गुरु कण का मूल स्रोत हैं। वही प्रथम संकल्प, प्रथम दिशा, जो बीज को आगे बढ़ाती है।

और फिर है पाँचवाँ तत्व — शक्ति।

वह पूँछ, वह बल, जो गुरु कण को गति देती है। वही ऊर्जा जो उसे समाज में जीवंत बनाती है। शक्ति आत्मा से अलग नहीं — वह उसकी प्रकटन है।

शब्द के पीछे की श्वास,

रेखा के पीछे की वक्रता,

शांति के भीतर की हलचल — यही शक्ति है।

अब वह बीज धरती पर चल रहा है।

और फिर भी, कहानी समाप्त नहीं हुई। वास्तव में, यह तो अभी शुरू हुई है।

क्योंकि यह गुरु कण, जन्म लेने के बाद, अब खोज में है।

क्या खोज रहा है वह?

वह फिर से ब्रह्म से मिलने को खोज रहा है — इस बार माँ के गर्भ में नहीं, बल्कि अनुभव के गर्भ में।

गुरु कण को और स्थान चाहिए — और ब्रह्म, जहाँ वह प्रवेश कर सके, सीख सके, सृजन कर सके।

जब एक बालक घर बनाता है, वह केवल दीवारें नहीं बना रहा — वह आकारहीन में संरचना भर रहा है। गुरु कण पुनः ब्रह्म में प्रविष्ट हो चुका है।

जब एक शिष्य गुरु के सामने मौन होकर बैठता है — गुरु का गुरु कण फिर ब्रह्म को छूता है।

जब कोई विचार चुपचाप बोया जाता है और कर्म में फलित होता है — गुरु कण ने अपना लय पा लिया है।

यही है काल और आकाश का सिद्धांत। Time and Space.

इस समय में, शिक्षक शिष्य के आकाश का उपयोग करता है — तराशने, जगाने, आकार देने के लिए।

शिक्षा कोई बर्तन भरना नहीं, बल्कि आकाश empty space ब्रह्म को आकार देना है।

यह बीज और मौन के बीच का नृत्य है।

इस प्रकाश में, ब्रह्मचर्य संयम नहीं — इस अंतर्क्रिया का कौशल है। यह वह अनुशासन है कि गुरु कण कहाँ और कैसे चलता है, कब वह स्थान में प्रवेश करता है, और वहाँ क्या सृजित करता है।

यह त्याग नहीं — सटीकता है। जानना कि कब देना है, कब लेना है, और कब केवल होना है।

इस दृष्टि से, यह सारा संसार गर्भों की एक श्रृंखला है। और हम — हर एक — बीज हैं, जिनके भीतर अपार शक्ति है।

नचिकेता के भीतर वाजश्रवस की संपूर्ण छाप है। केवल शरीर नहीं, बल्कि विचार प्रक्रिया, संकल्प, अनुशासन, और धर्म की स्मृति।

उसमें वही क्षमता है कि वह स्वयं वाजश्रवस बन सके — सृजन करे, रक्षण करे, विस्तार करे।

गुरु कणों का संचार करे — केवल प्रजनन द्वारा नहीं, बल्कि दृष्टि, कर्म और नियमों द्वारा।

और इसी तरह वंश चलता है — केवल रक्त से नहीं, बल्कि जागरूकता के संचार से।

हर बार जब हम सत्यपूर्वक बोलते हैं, हम गुरु कणों को प्रेषित करते हैं।

हर बार जब हम गलत पर संयम रखते हैं, हम उस बीज को सुरक्षित रखते हैं।

हर बार जब हम अहंकार रहित कार्य करते हैं, हम उस बीज को ब्रह्म को अर्पित करते हैं।

तो नचिकेता कौन है?

वह केवल दस वसंतों का बालक नहीं है। वह गतिशील गुरु कण है। वह है वह जो होता है जब एक पिता स्पष्टता से देता है, एक माता मौन में ग्रहण करती है, और आत्मा जन्म नहीं केवल जीने के लिए, बल्कि स्मरण के लिए लेती है।

वह है पहले संयोग की प्रतिध्वनि।

ब्रह्मांडीय क्रिया की पुनरावृत्ति।

स्मरण कि सृष्टि कोई एक बार की घटना नहीं, बल्कि लगातार खुलता हुआ चक्र है।

हर अंतर्क्रिया एक अवसर है फिर से ब्रह्म से मिलने का।

हर मौन एक गर्भ है, प्रवेश की प्रतीक्षा में।

हर जागरूकता का कार्य एक बीज है, जो रोपण की राह देख रहा है।

नचिकेता केवल कथा का पात्र नहीं। वह स्वयं कथा है।

वह कथा, कि नियम - सातत्य कैसे जन्म लेते हैं।

लय कैसे पुनः स्मरण होता है।

और गुरु कण, अपने घर की ओर यात्रा कैसे करता है।

वाजश्रवस — पिता, सूर्य, संकल्प

जब हम प्राचीन ग्रंथों में राजाओं की बात करते हैं, तो हम केवल सिंहासन और सोने की बात नहीं करते। कभी-कभी राजा वह व्यक्ति होता है जो व्यवस्था में धनी हो — एक ऐसा पिता, एक गृहस्थ जो संतुलन बनाए रखता हो, एक दाता जो जानता हो कि क्या देना है और किसे देना है। नचिकेता के पिता ऐसे ही थे।

उनका नाम था वाजश्रवस — जिसका अर्थ है वह जो धन या अन्न देता है। वे समृद्धि, उर्वरता और धर्म के प्रवाह के वाहक थे। वे विस्तारवादी और रक्षात्मक थे — सूर्य जैसे, ब्रह्मांडीय नियम की लय जैसे। यह समृद्धि केवल अनाज, पशु या क्षेत्रफल से नहीं मापी जाती थी, बल्कि उस चीज़ से मापी जाती थी जो वे दे सकते थे। और वे केवल पुत्र नहीं देते थे — वे एक जीवित गुरु कण देते थे। एक संकेंद्रित इच्छा और ज्ञान का अंश जो उनके भीतर से जीवन में प्रवाहित हुआ था।

वाजश्रवस राजा थे, हाँ — लेकिन वे ऋषि भी थे, चाहे वे साधु के वस्त्र पहनते हों या नहीं। क्योंकि ऋषि वह होता है जो ज्ञान की रक्षा करता है, सत्य को सुविधा के नीचे दबने या शोर में भूल जाने नहीं देता। इस दृष्टि से, आज के समय में हममें से कई को अपने घरों, अपने कार्यस्थलों, यहाँ तक कि बच्चों से बात करने या भोजन को आशीर्वाद देने के तरीके में भी ऋषि बनना होगा। जहाँ कहीं भी ज्ञान की रक्षा होती है, वहाँ ऋषि तत्व मौजूद होता है।

तो वाजश्रवस बन जाते हैं एक प्रतीक — केवल पिता का नहीं, बल्कि एक ऐसे पुरुष का जो जानता है कि क्या दिया जाना चाहिए और क्या त्याग दिया जाना चाहिए।

और यह हमें उस कर्म की ओर ले जाता है जो पहली नजर में अजीब लग सकता है — ब्रह्मणों को पुरानी गायें देना।

गाय, विशेषकर भारतीय चेतना में, केवल एक पशु नहीं है। वह व्यवस्था, त्याग, पृथ्वी के साथ तालमेल का प्रतीक है। वह धीरे-धीरे चलती है। वह गुरुत्वाकर्षण का पालन करती है। वह बिना विरोध के दूध देती है। उसकी सांस धीमी है। उसकी आँखें शांत हैं। वह हर कदम में आज्ञाकारिता की प्रत्यक्षता है।

और वृद्धावस्था में — जब वह प्रजनन नहीं करती, जब उसका दूध कम हो जाता है — तब वह और भी पवित्र हो जाती है। क्योंकि अब वह केवल हो रही होती है। वह मजबूरी से नहीं, बल्कि लय में जी रही होती है। और उस शांति में, वह पृथ्वी के नियम का दर्पण बन जाती है।

इसीलिए ब्राह्मणों वीर्य कण को पुरानी गायें—वे गहन अवलोकन के लिए उपयोगी थीं। ब्राह्मण - शुक्राणु, जो लय के रक्षक थे, वे गाय की चाल, उसका शरीर का तापमान, सूर्य के साथ उसका मेल, उसकी मौन अस्वीकृतियाँ और संवाद पढ़ते थे। जैसे वैज्ञानिक उपग्रह का अध्ययन करता है, या माँ बच्चे की चिल्लाहट समझती है, ब्राह्मण गाय को पढ़ते थे। वह उनका कानून - यम की पुस्तक बन जाती थी।

और देखिए कितना सुंदर है यह चक्र: गाय, पृथ्वी, दाता, और ग्रहणकर्ता — सब एक ही वृत्त के अंग हैं। भारतीय पौराणिक कथाओं में, जब पृथ्वी भारी हो जाती है, तो वह गाय का रूप लेकर ब्रह्मा के पास जाती है। और जब देवताओं को शांति में निवास करना होता है, तो कहा जाता है कि वे गाय में वास करते हैं — न कि गाय जादुई होने के कारण, बल्कि इसलिए कि वह ब्रह्मांडीय सत्य के लिए पारदर्शी होती है।

अब अपनी दृष्टि वापस लाएं वाजश्रवस पर। जब वे ये गायें देते हैं, वे पुराने को निकाल नहीं रहे, बल्कि पृथ्वी की पुस्तक उन्हीं को दे रहे हैं जो इसे पढ़ सकते हैं। वे कहते हैं, “यह जीव प्रकृति से जुड़े हैं। इनकी लय को समझकर जीवन को चलाओ।” और उसी यज्ञ में वे अपना पुत्र भी देते हैं।

देखिए कैसे ये दो क्रियाएं एक-दूसरे की झलक हैं। वे गाय ब्राह्मणों को देते हैं — जो प्रकृति की लय पढ़ते हैं। वे पुत्र यम को देते हैं — जो प्रकृति की लय है। यहाँ कुछ भी अनियमित नहीं है। कुछ भी व्यर्थ नहीं है।

वास्तव में, आप आज भी इस सिद्धांत की सरलता महसूस कर सकते हैं। जब कोई बच्चा मौसम के बदलाव को देखता है, और कोई उसे धीरे से समझाता है, “देखो, पत्ते गिर रहे हैं क्योंकि पेड़ आराम कर रहा है”—यह ब्राह्मण का काम है। यह गाय के उपहार का संचार है। जब एक पिता अपने बच्चे से कहता है, “मैं तुम्हें हर संकट से बचा नहीं सकता — लेकिन मैं तुम्हें सही जीना सिखा सकता हूँ,” वह वाजश्रवस बन जाता है। वह सुरक्षा नहीं, बल्कि नियम देता है। जब शिक्षक कहता है, “इस शास्त्र को याद मत करो — इसकी लय में जियो, अपने परिवेश को महसूस करो, और देखो कहाँ तुम

प्रकृति के नियमों का उल्लंघन कर रहे हो” —यह फिर गाय बोल रही होती है, मानव होंठों के माध्यम से। धरयते इति धर्मः।

यह कठोर सत्य का सौम्य रूपांतरण है — न कि उसे मोड़ना, बल्कि उसे ऐसी जगह बोना जहाँ लोग बिना ठोकर खाए चल सकें। रसोई में, बस में, सुबह की सैर में, किसी अजनबी को नमो नारायण करने में, भोजन का सम्मान करने में, बारिश के बाद नंगे पैर चलने में। इसी तरह नियम फिर से स्वाभाविक बन जाता है। उसे खुली ज़मीन पर लौटना चाहिए, जहाँ गायें अभी भी चलती हैं, और पिता सोचते हैं कि वे क्या छोड़ कर जाएंगे।

हम दान को त्याग न समझें। इस उपभोक्तावादी युग में, पुरानी चीजें देना कभी-कभी हानि जैसा लगता है। लेकिन अगर हम उपहार को सही दृष्टि से देखें, तो पता चलता है कि यह एक जीवित शिक्षा है — प्रेम से दी गई, श्रद्धा से प्राप्त की गई, और शब्दों के भूल जाने के बाद भी मन में संजोई गई।

भारतीय परंपरा में कहा जाता है:

वीर्यवान के पूत होते हैं बलवान।

यह केवल जैविक बात नहीं है। यह संकेंद्रित जीवन शक्ति की शक्ति को पहचानना है। वाजश्रवस, वृषवाह के रूप में, केवल वह पुरुष नहीं जो जन्म देता है। वह वह पुरुष है जो सही तरीके से देता है। उनका गुरु कण, उनका बीज, संयोग नहीं था — वह समृद्ध, अनुशासित और निर्देशित था। और नचिकेता केवल एक बालक नहीं है। वह उस बीज का फूलना है।

प्राचीन भारत में, राजा केवल शासक नहीं थे। वे धर्म के रक्षक, ज्ञान के संरक्षक और ब्राह्मण समुदाय के संरक्षक थे। मंदिरों में दान पेटियां नहीं थीं। राजा स्वयं सुनिश्चित करते थे कि जो ज्ञान संरक्षित करें, उनका पालन-पोषण हो। ब्राह्मण केवल पुजारी नहीं थे — वे कानून के पर्यवेक्षक, लय के पाठक, प्रकृति की भाषा के अनुवादक थे। और गाय उनकी पाठ्यपुस्तक थी।

गाय गुरुत्वाकर्षण के नियम का पालन करती है। वह चार पैरों पर चलती है, पृथ्वी के आकर्षण से तालमेल में। उसका शरीर सूर्य की एक विशेष किरण ग्रहण करता है, जिससे उसका गोबर और मूत्र हानिकारक बैक्टीरिया को मारने में सक्षम होता है। वह बिना मांग के पोषण करती है। वह समर्पण में जीती है। और जब वह मासिक धर्म बंद कर देती है, जब उसका दूध कम हो जाता है, वह ग्रहों की लय का जीवित संकेत बन जाती है। ब्राह्मण, जो अवलोकन में प्रशिक्षित थे, उसकी देह भाषा पढ़कर समझ सकते थे कि बिना नुकसान के पृथ्वी पर कैसे जीवित रहना है — बदलते मौसम के साथ कैसे तालमेल बैठाना है, मौन नियमों को समझना है।

भारतीय ग्रंथों में कहा गया है कि जब पृथ्वी परेशान होती है, वह गाय का रूप लेकर ब्रह्मा के पास जाती है। यह केवल एक कथा नहीं है — यह एक संकेत है। यह बताता है कि गाय पृथ्वी की आवाज़ है। उसका शरीर ग्रहों की बुद्धिमत्ता का नक्शा है। उसकी मौनता खालीपन नहीं, बल्कि शिक्षा है।

और इस प्रकार, जब वाजश्रवस गाय देते हैं, तो वे नियम देते हैं। जब वे पुत्र देते हैं, तो वे नियम का भविष्य देते हैं। एक है पुस्तक, दूसरा है पाठक। एक है लय, दूसरा है चलने वाला।

सृष्टि (गर्भ — केवल जैविक नहीं, ब्रह्ममय)

हमारी परंपरा में बहुत कुछ खो गया है, न कि इसलिए कि उसे छुपाया गया था—बल्कि इसलिए कि हमने सुनना बंद कर दिया कि शब्द वास्तव में क्या कह रहे थे। उदाहरण के लिए कठोपनिषद का नाम लें। हमें बताया जाता है कि इसका अर्थ है "एक लड़के और मृत्यु के देवता के बीच संवाद।" लेकिन अगर हम फिर से ध्यान से सुनें—एक साधक की तरह?

कथा — केवल एक कहानी नहीं, बल्कि एक वृक्षा एक लकड़ी। कुछ जड़ें जमाए हुए, कुछ जीवित, कुछ जो फल देता है।

उपनिषद — केवल शिक्षा नहीं, बल्कि एक फुसफुसाई हुई सच्चाई, जो जानने वाले से जानने की इच्छा रखने वाले तक पहुँचती ज्ञान के चरणों में मौन में साझा की जाती है।

तो कठोपनिषद केवल एक कथा नहीं है। यह एक वृक्ष और उसके बीज के बीच संवाद है। एक पिता और उस सार के बीच जो उससे गिरा—एक विशाल परिपक्व गुरु और वह छोटा गुरु कण जो उसे आगे बढ़ाता है।

नचिकेता, वह बीज, केवल एक लड़का नहीं है। वह जीवन की संभावना है, अपने पिता वाजश्रवस की संकेंद्रित इच्छा है, जो गर्भ से होकर रूप में आई है। और हर बीज की तरह, गाय की तरह, उसे गिरना है, प्रतीक्षा करनी है, और अंधकार से लड़ना है, ताकि वह स्वयं एक वृक्ष बन सके।

और फिर देखें क्या होता है।

नचिकेता को यम, अर्थात् संविधान/ धर्म को दिया जाता है। लेकिन जब वह पहुँचता है, यम घर पर नहीं होते। और यह अनुपस्थिति कोई गलती नहीं है—यह पहली बड़ी शिक्षा है। क्योंकि कोई भी अपनी पहली श्वास में कानून का सामना नहीं करता। पहले प्रतीक्षा करनी होती है। अवलोकन करना होता है। खुद को खाली करना होता है।

तो नचिकेता सीमा पर बैठता है। तीन दिन उपवास करता है। न खाना, न पीना। न कोई माँग। केवल स्थिरता। केवल उपस्थिति।

अब गहरे अर्थ में उतरें। यह प्रतीक्षा केवल समय के लिए नहीं है। यह एक रूपक है। एक दर्पण है।

जब शुक्राणु अंडाणु के पास पहुँचता है, क्या वह चिल्लाता है? क्या वह माँग करता है?

नहीं। वह प्रतीक्षा करता है। वह तैरता है। वह मौन के साथ धड़कता है। और हालांकि वह "खाता" नहीं है, वह गहराई से अंडाणु से पोषित होता है। भोजन से नहीं, बल्कि सम्हाले जाने से। सृष्टि उपवास की एक अवस्था में शुरू होती है।

चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी तिथि – साँझ प्रातः की संध्या -- सुषुम्ना स्वर – गंडांत इत्यादि।

इसलिए, हमारी परंपरा में जब कोई खा या पी रहा होता है, तो हम उसे नमस्ते नहीं करते। क्योंकि उनकी ऊर्जा अंदर की ओर केंद्रित, ग्रहणशील होती है। वह अवस्था पवित्र होती है, जिसे बाधित नहीं करना चाहिए। ठीक वैसे ही जैसे नचिकेता का तीन दिवसीय उपवास। ठीक वैसे ही जैसे गुरु कण गर्भ की द्वार पर प्रतीक्षा करता है।

जब यम अंततः लौटते हैं—स्वयं कानून प्रकट होता है—तो वह बालक के धैर्य से प्रभावित होता है। वह वरदान देता है। और फिर हमें केवल शब्द नहीं, बल्कि उनके नीचे की संरचना सुननी चाहिए।

पाँच वरदान: पंचाग्नि और सृष्टि की संरचना

पहले तीन वरदान तीन बिंदुओं के अनुरूप हैं—सृजन, पालन, और परिवर्तन—जो शुक्राणु में संहितित हैं। इन्हें अछूता, स्वस्थ, और अर्धवट रहना चाहिए।

यदि इनमें से कोई भी टूट जाए, तो परिणाम हो सकता है अधूरा जीवन, अपरिपक्व फल। सीमित शरीर। पूरी तरह जाग्रत नहीं प्राणी।

इसलिए पहला वरदान है: बीज सभी तीन ज्योतियों को बिना क्षीण हुए धारण करो।

चौथा वरदान और भी गहरा है। यह स्त्री, पृथ्वी, शक्ति के साथ संवाद के बारे में है। यह ज्ञान है कि बीज प्रभुत्व नहीं करता, बल्कि मिलन करता है, सीखता है, सुनता है। यह उपस्थिति का विज्ञान है, शक्ति का नहीं। बीज गर्भ को आकार देता है, हाँ—पर गर्भ भी बीज को आकार देता है।

यदि पृथ्वी तत्त्व पृथ्वी है, तो उसमें प्रवेश करना महासागर में गोता लगाने जैसा है। दबाव अत्यंत होता है। अंडाणु खाली पात्र नहीं है—यह रूप का द्वारपाल है। गुरु कण को पार पाने के लिए खुद को तराशना, खोलना, समायोजित करना, और समझौता करना पड़ता है।

और यहाँ एक अद्भुत समानता उभरती है। आपने परशुराम के बारे में सुना है, है ना? वह जिसने कहा जाता है कि क्षत्रियों को 21 बार पराजित किया। क्यों 21?

क्योंकि गुरु कण को भी अंडाणु में प्रवेश करते समय 21 आंतरिक बाधाओं को जीतना पड़ता है—रूपों में विभाजित होना, पांच इन्द्रिय, पांच कर्मांग, पांच प्राण, पांच तत्त्व और मन के लिए जगह बनाना। ये 21 क्षेत्र दुश्मन नहीं, बल्कि एक योद्धा वर्ग की तरह हैं, जिन्हें सटीकता और शक्ति से एक-एक करके जीतना पड़ता है।

इसलिए शुक्राणु बनता है परशुराम। एक पवित्र योद्धा। लड़ाई जीवन को सही ढंग से आकार देने के लिए है, विनाश के लिए नहीं।

और अंडाणु बनती है पृथ्वी, मातृभूमि, जो गुस्से से नहीं, बल्कि वजन, अनुशासन, और रूप से विरोध करती है।

यह शक्ति है—न केवल निष्क्रिय पदार्थ, बल्कि सक्रिय दबाव। वह केवल प्रवेश की अनुमति नहीं देती; वह बीज से उसकी लय साबित करने की मांग करती है।

पाँचवाँ वरदान सबसे दुर्लभ है: वियोग की कला। बिना सृष्टि से जुड़े हुए, सृजन करने की क्षमता। यह समझ कि यद्यपि कोई उत्पन्न कर सकता है, उसे हमेशा उत्पन्न नहीं करना चाहिए। जीवन की शक्ति, जब समझी जाती है, तो उसे संरक्षित, परिवर्तित या ऊपर चढ़ाया जा सकता है।

यह ब्रह्मचर्य का मूल है—संयम भी, संरेखण भी। कब छोड़ना है और कब रोकना है, कब क्रिया करनी है और कब स्थिर रहना है—इसकी गहरी समझ। गुरु कण, अब पूर्ण रूप से बना, जानता है कि फिर से शांति में कैसे लौटना है।

और यह सब... यह सब... मौन में एक पिता, एक पुत्र, एक उपवास और तीन - पांच वरदानों की कहानी में संहतित है।

वृक्ष और बीज

पर यह कहानी वास्तव में क्या है? यह जंगल बीज को बताता है कि कैसे बढ़ना है। वृक्ष फल से कहता है: "अब गिर जाओ। मत डराओ। टूट जाओ। तुम सब कुछ मेरे हो। पृथ्वी से मिलो। और अपने गिरने में, तुम उठोगे।"

शिव पृष्ठभूमि में मौन से देखते हैं—नाम के रूप में नहीं, रूप के साथ देवता के रूप में नहीं, बल्कि आत्मा के रूप में। शुद्ध चेतना, साक्षी। शिव हस्तक्षेप नहीं करते—वे सशक्त करते हैं। वे प्रकाश डालते हैं। वे वह अग्नि हैं जो गुरु कण को उसका प्रकाश देते हैं।

और इस प्रकार, नचिकेता की यात्रा हम सभी की यात्रा है—हर बच्चे की, हर विचार की, हर सृजन की क्रिया की। उत्पत्ति से, दबाव के माध्यम से, जीवन में, और मुक्ति की ओर।

परशुराम

अगर परशुराम कभी इस पृथ्वी पर कुल्हाड़ी हाथ में लेकर युद्धकर्ता वर्ग को इक्कीस बार हराने निकले थे, तो यह रक्तपात की कहानी नहीं थी। यह कहानी थी सटीकता की। कहा जाता है कि क्षत्रिय—जो धर्म की रक्षा के लिए जन्मे थे—अपना रास्ता भूल गए थे। शक्ति बोझ बन गई थी, प्रकाश नहीं। इसलिए परशुराम आए—मानवता को नष्ट करने नहीं, बल्कि उसे तेज करने, मार्ग को शुद्ध करने, और कानून को पुनः सरेखित करने।

परशुराम ब्राह्मण थे, ऋषि जमदग्नि और सती रेणुका के पुत्र। उनकी कुल्हाड़ी कोई साधारण अस्त्र नहीं थी। उसमें सूर्य—सूरज—की ऊर्जा समाहित थी। सूर्य की तेज़ी इतनी प्रबल थी कि उनकी पत्नी संजना, जो विश्वकर्मा की पुत्री थीं, उसे सहन नहीं कर पाईं। वह भाग गई। तब विश्वकर्मा ने सूर्य की तेज़ी को नए आकार में ढाला और उस सौर शक्ति के टुकड़े देवताओं को अस्त्र के रूप में दिए। परशुराम की कुल्हाड़ी उनमें से एक था—सूर्य की अग्नि से भरा हुआ, जो रूप को काट सकता था, जैसे शुक्राणु अंडाणु को काटता है।

यह पौराणिक कथा नहीं, बल्कि रूपक में जीवविज्ञान है। जैसे हमने देखा कि विष्णु के मत्स्य अवतार ने गर्भ में प्रारंभिक जीवन के जलीय स्वभाव को दर्शाया, वैसे ही परशुराम आकार देने, काटने, और जीवन के लिए पात्र तैयार करने की क्रिया का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अब फिर देखें। गुरु कण—शुक्राणु—अंडाणु में प्रवेश करता है, जो खाली नहीं, बल्कि रूप, दबाव और सीमा से घना स्थान है। वह केवल प्रवेश नहीं करता—बल्कि संघर्ष करता है। विभाजित करता है। तराशता है। सक्रिय करता है। बिल्कुल वैसे ही जैसे परशुराम करते थे।

शुक्राणु को भी इक्कीस स्तरों को पार करना पड़ता है—जिसमें पांच महाभूत (तत्त्व), पांच कर्म इंद्रिय (क्रिया अंग), पांच ज्ञान इंद्रिय (इन्द्रिय अंग), पांच प्राण और अंत में मन शामिल हैं—कुल इक्कीस। प्रत्येक को पार करना, व्यवस्थित करना, और सामंजस्य स्थापित करना होता है। यह आक्रमण नहीं, गति के माध्यम से समायोजन है। गुरु कण को आत्मा के आने के लिए द्वार खोलना होता है।

इसलिए हम कहते हैं—गुरु कण ही मिलाकर है। केवल मिथक में नहीं, बल्कि प्रत्येक गर्भाधान के क्षण में। वह योद्धा है जो मार्ग साफ करता है। बाहर नहीं—भीतर।

और फिर, जब यह मार्ग बन जाता है, जब इक्कीस स्तर क्रम के सामने झुक जाते हैं, तब कुछ होता है। एक स्थान बनता है। और आत्मा अवतरित होती है।

पर कहाँ से?

यहाँ माता का गर्भ पृथ्वी बन जाता है, और आत्मा महासागर की मंथन होती है। पृथ्वी का घूमना। सूर्य के चारों ओर क्रांति। ये केवल खगोलीय तथ्य नहीं हैं। ये ऊर्जा के बल हैं, और गर्भ उनसे अलग नहीं है। जैसे दूध को बर्तन में घुमाया जाता है, वैसे ही अम्लियोटिक द्रव “भ्रूण” मंथित होता है। भीतर बच्चा न केवल शरीर से, बल्कि ब्रह्मांडीय शक्तियों से भी घूमता और उछलता है।

और इस मंथन से क्या जन्म लेता है? **आत्मा।**

माता केवल मांस की वाहक नहीं है। वह सार की रसायनज्ञ है। और इस मंथन में जो आत्मा उत्पन्न होती है, वह **राम** है—धनुषधारी पुरुष, आत्मा स्वयं, जो कृपा, अनुशासन और ग्रहीय क्रम से निर्मित है। जहाँ **परशुराम** शरीर को तराशता है, **राम** रूप में प्रवेश करता है—शुद्ध, श्रेष्ठ, संरक्षित। माता की आत्मा से स्थापना - शिशु की आत्मा का मंथन के कारण जन्म।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते | पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

अब रुकिए और महसूस कीजिए: परशुराम गुरु कण है। राम आत्मा कण है। वे मिलकर जीवन बनाते हैं। एक संरचना है। दूसरा उस संरचना में स्वास है। एक तैयार करता है। दूसरा आता है।

और यह हमें अवतारों के चक्र तक ले आता है।

हम अक्सर सुनते हैं कि विष्णु ने दस रूप धारण किए—मत्स्य से लेकर कल्कि तक। पर ज्ञानी जानते थे: अवतारों की संख्या चौबीस है। क्यों चौबीस? क्योंकि ये केवल दिव्य अवतरण नहीं हैं। ये जीवन और चेतना के विकास के चरण, स्तर और अवस्थाओं के कोड हैं।

पहले अवतार—मत्स्य से कूर्म, वराह, और नरसिंह तक—जल से, अराजकता से रूप के उदय का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये पदार्थ के प्रथम तत्व हैं। मिथक नहीं—जीवविज्ञान। वे बनना शुरू करने के चरण हैं—गर्भ में जल का मछली रूप, कवच में कछुआ, कीचड़ से उठता वराह, सीमा तोड़ता अर्ध-जीव। यह बालक का निर्माण है।

फिर आते हैं परिष्कृत रूप: वामन, छोटा आकार; परशुराम, स्पष्टता का योद्धा; राम, अनुशासन की आत्मा; कृष्ण, बुद्धि का खेल; बुद्ध, जागरण। और अंत में: कल्कि।

पर कल्कि क्या है?

कल्कि भविष्य का अवतार। कल्कि हर जन्म है। जब बच्चा जन्म लेता है, तो वह धीरे से नहीं रखा जाता। वह ताकत, दबाव और अग्नि के साथ आता है। गर्भ का धक्का। फेफड़ों की चिल्लाहट। प्रकाश का प्रवाह। यह कल्कि है—जो तब आता है जब चक्र पूरा हो, सब कुछ संरेखित हो, शरीर बना हो और आत्मा स्थापित हो।

और यह बच्चा खाली नहीं आता। वह सुर और असुर प्रवृत्तियों के साथ आता है—दिव्य और अहंकारी। वह राजोगुण के साथ आता है—मध्य में सक्रिय ऊर्जा। वह विष्णु के पूरे चक्र को धारण करता है।

चौबीस अवतार। दस ज्ञाता। चौदह मौन रूप में भीतर रहते हैं। ये इतिहास के घटनाक्रम नहीं, बनते रहने की अवस्थाएं हैं।

और विष्णु वास्तव में वही है जो बनाए रखते हैं। वह जो लय बनाए रखते हैं। इसलिए गुरु कण रूप बनाए रखता है। आत्मा दिशा बनाए रखती है। और वे मिलकर अवतारों की पूरी स्मृति वहन करते हैं—सागर से देव तक, जीव से प्राणी तक, योद्धा से बालक तक।

इसलिए जब बच्चा जन्म लेता है, तो वह शुरुआत नहीं करता—वह जारी रखता है। वह कल्कि है। जो घोड़े पर सवार है। नष्ट करने नहीं, बल्कि स्पष्ट करने, आगे बढ़ाने आता है।

और यह सब तब शुरू हुआ जब गुरु कण अंडाणु में प्रवेश किया, इक्कीस रूपों में विभाजित हुआ।

वह गुरु कण तुम हो।

वह गुरु कण मैं हूँ।

यह हम सभी में है—भीतर का परशुराम - वो नचिकेत जिसको पास सूर्य बल भी है, आत्मा बल - राम बल - शिव बल।

शक्ति और अग्नि

जब एक बच्चा जन्म लेता है, तो हम केवल सतह देखते हैं। छोटा शरीर, नरम त्वचा, मृदु रोना। लेकिन उस कोमलता के नीचे एक आग जलती है। एक प्रकाश है। एक नियम है।

और वह आग तब से जल रही है, जब फेफड़ों ने स्वास लेना सीखा ही नहीं था।

अब हम फिर से शुरुआत पर लौटते हैं—न केवल रूप की शुरुआत, बल्कि गति की, ऊर्जा की, बनने की।

हमने गुरु कण के बारे में बात की है, उसके अंडाणु में प्रवेश और इक्कीस द्वारों को तराशने की प्रक्रिया के बारे में। लेकिन अब इस नव निर्मित पात्र को क्या जीवित करता है? क्या ऊर्जा देता है? कच्चे को असली में क्या बदलता है?

आग।

वह आग जो लकड़ी जलाती है, वह नहीं। बल्कि वह आग जो भोजन को जलाती है। वह आग जो विचार को शरीर में पकाती है। वह आग जो निराकार को क्रियात्मक बनाती है।

भगवद गीता में श्री कृष्ण कहते हैं:

"अहम वैश्वनरो भूत्वा प्राणिनाम देहमाश्रितः

प्राणपानसमायुक्तः पचामिन्नं चतुर्विधम्।"

"मैं वैश्वनर अग्नि होकर, सभी प्राणियों के शरीर में निवास करता हूँ, प्राण अपान और समान के साथ मिलकर भोजन को पचाता हूँ।"

यह केवल पाचन की बात नहीं है। यह रूपांतरण है।

यह श्लोक केवल चयापचय (metabolism) का वर्णन नहीं करता—यह शक्ति के सबसे मूल रूप की बात करता है: वह आग जो रूपांतरण करती है।

वह वैश्वनर अग्नि—यह गुरु कण के भीतर की शक्ति है। वह अलग नहीं है। वह इंतजार नहीं कर रही। वह जीवन के रूप लेने के क्षण में प्रवेश करती है।

जब गुरु कण अंडाणु से मिलता है, वह केवल शरीर की भेंट नहीं है—यह अग्नि और पदार्थ का मिलन है।

शक्ति वैश्वनर अग्नि के रूप में प्रवेश करती है, और वह अकेले काम नहीं करती। वह पाँच प्राणों के साथ नृत्य करती है—वे सूक्ष्म वायु हैं जो सभी जीवों की त्वचा के नीचे सांस लेते हैं।

और ये पाँच प्राण क्या हैं?

ये केवल विचार नहीं हैं। ये विश्वास नहीं हैं। ये बुद्धिमत्ता की गति हैं—अनुभव की गई, न कि समझाई गई। परंतु आइए उन्हें नाम देते हैं, ताकि वे हमारी जागरूकता में जीवित हो सकें।

- प्राण — आने वाली श्वास । जीवन शक्ति का आगमन।

- अपान — नीचे की ओर जाने वाली शक्ति। छोड़ने, छोड़ देने, आधार देने की क्रिया।
- व्यान — फैलने वाली श्वास। वितरक। शरीर के भीतर की नदी।
- उदान — उठने वाली शक्ति। जो ऊपर उठाती है, आवाज़ देती है, विकास करती है।
- समान — संतुलक। केंद्रीय अग्नि। वह जो पचाता और समान रूप से वितरित करता है। पवित्र अग्नि के पुरोहित।

ये पाँच मिलकर जीवन का आंतरिक संगीत बनाते हैं।

और वैश्वनर अग्नि—महान पाचन अग्नि—उनका निर्देशक है।

गुरु कण, रूप में प्रवेश करने के बाद, अब रूपांतरण का मंदिर बन जाता है। गर्भ में हर गति, मां की हर श्वास, भोजन का हर टुकड़ा, ऊर्जा का हर पल—यह सब आग के लिए सामग्री बन जाता है।

और इसलिए शिव दूर नहीं हैं।

वह भीतर हैं, मौन आत्मा की तरह चमकते हुए। वह प्रकाश हैं जो अग्नि को जलाते हैं, उपस्थिति हैं जो शक्ति को उठाते हैं, वह साक्षी हैं जो हर श्वास को आशीर्वाद बनाते हैं।

अब एक पल सोचिए।

आप भोजन पाते हैं, पर उसे पचाता कौन है?

न आपकी इच्छा शक्ति, न आपकी बुद्धि।

यह वैश्वनर अग्नि है—आंतरिक सूर्य, चुपचाप चावल को शक्ति में, दूध को विचार में, फल को गति में बदलता हुआ।

और यही प्रक्रिया जन्म से पहले भी चल रही थी, जब गुरु कण गर्भ में बैठा था। वहाँ भी शक्ति पहले से पका रही थी, गढ़ रही थी। वे पोषण के सभी रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं, सूक्ष्म से स्थूल तक।

जैसे पृथ्वी सूर्य पर निर्भर है प्रकाश संश्लेषण, मौसम, और समय के लिए, वैसे ही बनने वाला जीवन इस आंतरिक सूर्य, शिव/वैश्वनर पर निर्भर है। और जैसे सूर्य बिना आकाश के नहीं चल सकता—वैसे ही शक्ति बिना शिव के नहीं चल सकती।

यहीं उनकी एकता स्पष्ट होती है।

शिव हैं आत्मा, क्रिया रहित उपस्थिति, गति सहित प्रकाश।

शक्ति है आग, कर्ता, रूपांतरण करने वाली, स्थिरता के भीतर गति।

और जब दोनों सरेखित होते हैं, तो केवल बच्चा नहीं, एक जीवित नियम जन्म लेता है।

इसलिए जब हम अपने बच्चों को भोजन, सांस, विश्राम, और मौन के बारे में सिखाते हैं—तो हम जीवनशैली नहीं, ब्रह्मांडीय विज्ञान पढ़ा रहे होते हैं।

वह बच्चा जो पालने में लेटा है, वह "खाली" नहीं है। वह ब्रह्मांड को पचा रहा है। हर कोशिका प्राण से बुनी जा रही है। हर कार्य अग्नि द्वारा नियंत्रित है। हर गति शक्ति के द्वारा शिव की दृष्टि में नृत्यित है।

और वृक्ष बीज को यह संदेश देता है: नियम के साथ अग्नि के साथ रहो। लय के साथ रहो।

यह अनुशासन के लिए नहीं—जीवन के लिए है।

अगर हम प्राण भूल जाएं, तो पाचन कमजोर हो जाता है।

अगर हम अग्नि भूल जाएं, तो विचार मंद पड़ जाते हैं।

अगर हम शक्ति भूल जाएं, तो रूप ध्वस्त हो जाता है।

अगर हम शिव भूल जाएं, तो उद्देश्य मुरझा जाता है।

यही कारण है कि नचिकेता की कथा केवल मृत्यु की नहीं है। यह सही पकाने की कहानी है। इतने समय तक द्वार पर प्रतीक्षा करने की, कि आपकी आग स्थिर हो जाए, आपकी श्वास केंद्रित हो जाए, और आपकी आत्मा बिना शोर के प्रकट हो जाए।

इसलिए गुरु कण केवल रूप नहीं है। यह आग का पात्र है।

और जब भी हम जागरूकता से गहरी श्वास लेते हैं...

जब भी हम कृतज्ञता से भोजन करते हैं...

जब भी हम सुनने के बाद बोलते हैं...

हम शिव, शक्ति और अग्नि के इस नृत्य का सम्मान कर रहे होते हैं।

यह संदेश पिता से पुत्र को है।

और अब हम पूछते हैं: वे पाँच अग्नियाँ कौन सी हैं जो शुक्राणु आत्मा की ज्योति से प्राप्त करता है?

पहली है वैश्वनर अग्नि—पाचन अग्नि, जैसा कि गीता में कहा गया है। पर अन्य भी हैं, जो शास्त्रों और श्वास के तहों में छिपे हैं।

कैनोपनिषद (प्रश्न उपनिषद) में प्रत्येक तत्व श्रेष्ठता का दावा करता है। वायु कहती है, "मैं सबसे मजबूत हूँ।" अग्नि कहती है, "मैं सबसे तेज हूँ।" जल कहता है, "मैं सबसे आवश्यक हूँ।" फिर भी, जब आत्मा प्रवेश करती है, तो हर एक झुक जाता है।

यह रहस्य है: शुक्राणु जब प्राण— वायु तत्व—से मिलता है, तो उसे अपार शक्ति मिलती है। वायु केवल गति नहीं है। वह शक्ति की वाहक है।

बाकी सभी मुलाकातें—गुरु कण का अन्य तत्वों से मिलन—महाभारत में जीवित होती हैं। प्रत्येक पांडव एक तत्व का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक तत्व शक्ति के क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। और हर क्षेत्र सक्रिय होता है जब गुरु कण अंडाणु को उर्वरित करता है और उस तत्वीय क्षेत्र में प्रवेश करता है।

यह मिथक नहीं। यह भौतिकी है। यह जीवविज्ञान है।

इसलिए जब हम शक्ति की बात करते हैं, तो हम तुम्हारे पेट में जलती आग, तुम्हारे फेफड़ों में श्वास, तुम्हारी कलाई में धड़कन की बात करते हैं।

और जब हम शिव की बात करते हैं, तो हम तुम्हारे विचारों के पीछे की शांति, तुम्हारे शब्दों के बीच का मौन, तुम्हारी आंखों के पीछे के साक्षी की बात करते हैं।

साथ मिलकर, और तुम—हाँ, तुम—वह नृत्य हो।

“अखिल विश्व का जो अमर आत्मा है, सभी प्राणियों का वही आत्मा है। वही आत्मा सच्चिदानंद मैं हूँ, अमर आत्मा सच्चिदानंद मैं हूँ।”

शिवोहं शिवोहं, शिवोहं शिवोहं।

गुरु कण और पाँच तत्व —

हमने देखा है कि यह कण, शुक्राणु, केवल एक भौतिक वस्तु नहीं है, बल्कि एक आध्यात्मिक चिंगारी है। यह केवल आनुवंशिक जानकारी नहीं ले जाता, बल्कि प्रकाश, नियम, और विचार (thoughts) भी ले जाता है। यह पिता की स्मृति, आत्मा के हस्ताक्षर, धर्म की दिशा लिए होता है।

और यह चिंगारी, किसी भी आग की तरह, अकेले जल नहीं सकती।

इसे ईंधन चाहिए।

इसे गति चाहिए।

इसे स्थान चाहिए।

इसे स्पर्श और सीमितता चाहिए।

यहाँ प्रवेश करते हैं पंचमहाभूत—पाँच महान तत्व—इस पवित्र कथा में। ये केवल काव्यात्मक विचार नहीं हैं। ये ब्रह्मांड के मूल अवयव हैं, और ये हर सृष्टि क्रिया में गहराई से जुड़े हुए हैं।

जब गुरु कण निकलता है, तो वह खाली जगह में अकेला तैरता नहीं है। वह तुरंत इन पाँच अनन्त साथियों के साथ संवाद में प्रवेश करता है: जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु, और आकाश। हर एक का अपना कार्य है।

- आकाश है वह व्यापकता जो सब कुछ समेटे हुए है, मौन साक्षी, वह क्षेत्र जहाँ जीवन खिलता है।
- वायु है जीवन की श्वास, अदृश्य धक्का और जीवन की धड़कन।
- अग्नि है वह रूपांतरक, पाचन की आग, इरादे की आग, बनने की आग।
- जल है वह वाहक, वह प्रवाह, वह माध्यम जो जीवन को गति देता है।
- पृथ्वी है रूप देने वाली, संरचना, हड्डी और आधार।

अंडाणु के साथ पहली ही छूँअन के क्षण से गुरु कण इन पाँच शक्तियों से आकार पाता है। यह ऐसा है जैसे घूमती हुई चक्की में नरम मिट्टी को ढाला जा रहा हो—प्रत्येक तत्व अपनी भूमिका निभाता है ताकि रूप स्थिर, कार्यशील, और दिव्य बने।

और यह निर्माण दुर्लभ या कभी-कभार नहीं होता—यह निरंतर हो रहा है।

आज भी, तुम्हारा शरीर लगातार गुरु कण उत्पन्न करता रहता है। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार एक स्वस्थ पुरुष शरीर लगभग 1,500 शुक्राणु प्रति घंटे उत्पन्न करता है—

एक लगातार चमत्कार, संभावित जीवन की निरंतर धारा। हर एक, एक पंखों वाली प्रार्थना की तरह, अपने तत्वों की छाप, अपने प्राण की ताकत, और अपनी आत्मा की ज्योति लेकर चलता है।

यह केवल जीवविज्ञान नहीं है। यह पवित्र पुनरावृत्ति है, दैनिक यज्ञ है, जो तुम्हारे अस्तित्व की तंतुओं के भीतर होता है।

तो सवाल उठता है—हम केवल यह नहीं देखते कि हम कितने कण उत्पन्न करते हैं, बल्कि कौन से प्रकार के?

उत्तर है—हम कैसे जीते हैं, सोचते हैं, किस भाव में भोजन करते हैं और महसूस करते हैं।

जैसे जल के अणु विचार से प्रभावित हो सकते हैं—एक ऐसी अंतर्दृष्टि जिसे आधुनिक विज्ञान धीरे-धीरे स्वीकार कर रहा है—वैसे ही गुरु कण भी उस मन से प्रभावित होता है जो उसे उत्पन्न करता है।

- एक शुद्ध मन स्पष्ट ऊर्जा उत्पन्न करता है।
- एक कृतज्ञ हृदय सामंजस्यपूर्ण तरंगें उत्पन्न करता है।
- एक अनुशासित श्वास मजबूत प्राण पैदा करता है, जो कण को शक्ति से भर देता है।

सृष्टि यांत्रिक नहीं है। यह उत्प्रेरक की गुणवत्ता के प्रति गहराई से प्रतिक्रियाशील है।

जैसे गुरु, वैसे शिष्य।

जैसे पिता, वैसे पुत्र।

जैसे फसल, वैसे बीज।

यह सत्य मिट्टी जितना पुराना है। और इसलिए भारतीय परंपरा में आंतरिक शुद्धता पर इतना जोर दिया जाता है, बाह्य प्रजनन से पहले। ब्रह्मचर्य, जागरूकता, उचित आहार, श्रद्धा—ये सभी बीज की तैयारी के तरीके हैं, ताकि जब वह क्षेत्र (गर्भ) में जाए, तो केवल बढ़े नहीं बल्कि नियम के साथ प्रतिध्वनित हो।

अब, गुरु कण और पाँच तत्वों के बीच यह संबंध कोई अलग विचार नहीं है। यह भारतीय संस्कृति में हर जगह झलकता है, खासकर पंचायतन पूजा के रूप में—पाँच देवताओं की पूजा, जो प्रत्येक पाँच तत्वों में से एक का प्रतिनिधित्व करते हैं।

- विष्णु आकाश का प्रतिनिधित्व करते हैं—सबका धारक, ब्रह्मांडीय संतुलन के रक्षक।
- सूर्य वायु का प्रतिनिधित्व करता है—प्राण ऊर्जा, सक्रियकर्ता।
- शिव अग्नि का प्रतिनिधित्व करते हैं—आत्मा, आंतरिक प्रकाश, जागरूकता के उत्प्रेरक।
- देवी, चाहे पार्वती हो या दुर्गा, जल का प्रतिनिधित्व करती हैं—पोषण करने वाली माता।
- गणेश पृथ्वी का प्रतिनिधित्व करते हैं—विघ्नहर, स्थिरता का प्रारंभ।

यह पूजा केवल भक्ति नहीं है—यह एक स्मरण है। यह कहती है: तुम इन पाँच से बने हो, और तुम्हें इनके साथ सामंजस्य में रहना है। जब तुम इन रूपों की पूजा करते हो, तो तुम देवताओं से अपने तंत्र को सृष्टि और संतुलन के ब्रह्मांडीय नियमों के अनुरूप ला रहे होते हो।

और ब्रह्मांड प्रतिक्रिया देता है—मौसमी बदलाव, स्वास्थ्य और विचार के माध्यम से।

अब गहराई से देखो: पूरा ब्रह्मांड भी इन्हीं पाँच तत्वों के कारण संचालित होता है। ग्रह घूमते हैं। तारे टिमटिमाते हैं। जल बहता है। हवाएं बदलती हैं। यह सब—आकाश में

समेटा, समय के स्पंदन में। यह अव्यवस्था नहीं है। यह चरैवेति—आह्वान है, चलते रहने का, घूमते रहने का, ग्रहों की तरह जीवित रहने का।

इसीलिए एक बच्चा भी लगातार हिलता रहता है। यह बेचैनी नहीं है—यह गूँज है। बच्चा ब्रह्मांडीय गति को प्रतिक्रिया दे रहा है। आप उसे बिना कारण घुमते, रेंगते, मुड़ते देखते हैं। लेकिन यह बिना कारण नहीं है। यह स्मृति है। यह सौरमंडलों की गूँज है, जो अब भी उनकी हड्डियों में जीवित है।

और इसलिए, शुक्राणु से आत्मा तक, स्वास से ग्रहों तक—सब एक ही संवाद का हिस्सा हैं।

तत्व केवल हमारे चारों ओर नहीं हैं।

वे हमारे भीतर हैं।

और हर क्रिया या तो उनके अनुरूप है या उनके विरोध में।

ऋषि, - वे वायु, अग्नि, गायों, नदियों, पेड़ों, और पर्वतों को नमन करते —अज्ञान से नहीं, वे इन्हें वस्तुएं नहीं, बल्कि सृष्टि के सहभागी समझते थे।

गुरु कण स्वयं एक सहभागी है।

और इसके धारक, वाहक, क्रिया में अनुवादक—तुम भी हो।

हम आकाश से आए हैं, आकाश में लौटेंगे,

आग और स्वास के माध्यम से हम उठते और जलते हैं।

पृथ्वी है रूप, और जल है प्रवाह,

और बीज के माध्यम से, सभी रहस्य बढ़ते हैं।

यह है तत्वों का संदेश। यह गुरु कण की लय है। और यह जीवन का नियम है।

शिव की एक बूंद

भारत में एक नदी है जो इतनी शांत शक्ति और गहरी अनुग्रह से बहती है कि ऋषि सदियों से इसके किनारे नंगे पाँव चलते रहे—बिना भोजन, बिना भय, केवल मौन की इच्छा लेकर।

उसका नाम है नर्मदा।

और वह केवल एक नदी नहीं है।

वह एक कथा है।

वह एक बूंद है।

वह एक नृत्य है।

नर्मदा अष्टकम में, स्वयं आदि शंकराचार्य द्वारा रचित एक स्तुति है, एक श्लोक है जो भक्ति के जंगल में लौ की तरह चमकता है:

"साबिन्दु सिन्धु सुष्कल तरंग भृङ्ग रञ्जितम्।"

पहली नजर में यह केवल एक सुंदर चित्र है:

"जहाँ महासागर की एक बूंद सूक्ष्म लहरें बनाती है, जो भंवरा को भी प्रिय होती हैं।"

लेकिन जब हम इसे केवल कान से नहीं, बल्कि साधक के हृदय से सुनते हैं, तो हम इससे भी अधिक कुछ सुनते हैं।

यह केवल एक नदी नहीं है। यह एक दिव्य बूंद से उत्पन्न हुई ज्ञान की लहर है।

परंपरा कहती है कि शिव, अपने कॉस्मिक नृत्य—तांडव—में आकाश को हिला देते हैं। जब वे बिना प्रयास के, आनंद के साथ नृत्य करते हैं, तब उनके दिव्य शरीर से एक पसीने की बूंद पृथ्वी पर गिरती है।

वह बूंद बन गई नर्मदा।

पसीना क्या है, है न तीव्र गति का परिणाम? लेकिन शिव के मामले में यह थकावट का पसीना नहीं था—यह अत्यंत आनंदित ज्ञान का शुद्ध सार था। वह पसीना था जो पारलौकिकता से, शुद्ध चेतना के चक्रीय स्पंदन से जन्मा था।

और उस बूंद से एक पूरी नदी बह निकली।

परशुराम द्वारा, वर्णित 24 तन्मात्राओं में से, 21 तन्मात्राओं को हमने जाना। 3 तन्मात्राएं — बुद्धि, चित्त और अहंकार—

ब्रह्मा, विष्णु, और महेश—इनका संबंध इन तन्मात्राओं में स्थापित है।

अहंकार के अधिपति महेश माने जाते हैं, और स्वयं महेश्वर, ईश्वरों के ईश्वर, का संबंध आत्मा से है।

इसी कारण, अहंकार को पहचान की श्रेणी में सुसज्जित किया गया है।

अहंकार के दो अर्थ होते हैं:

1. घमंड

2. पहचान (स्वत्व की अनुभूति)

जब आत्मा के स्तर पर स्थित यह अहंकार ब्रह्मानंद से स्पंदित होता है, तब वह दिव्यता की एक बूंद के रूप में प्रकट होता है—और वही बन जाती है नर्मदा।

सिर्फ पानी नहीं—धर्म की धारा, मौन नियम की नदी, एक तरल शास्त्र।

अब श्लोक के करीब आइए।

“साबिन्दु सिन्धु” –

“तरंग” –

“भृङ्ग रज्जितम्” – भृङ्ग (भंवरा), या कहा जाए तो ईर्ष्यालु है।

क्यों ईर्ष्या?

क्योंकि भृङ्ग तीव्रता से गुनगुनाता है, उसके पंख ताल और स्पंदन के साथ बजते हैं—
पर वह उस तरह की लहर पैदा नहीं कर सकता जो यह बूंद उत्पन्न करती है।

और यहाँ... यही हमारी गहरी चर्चा है।

शिव की वह बूंद, यह गति की चिंगारी, यह शक्ति की लहर—गुरु कण है।

ठीक वैसे ही जैसे पसीने की बूंद, पिता का वीर्य केवल एक आकस्मिक द्रव नहीं है—
यह जीवन ऊर्जा, बुद्धि, और संहिताबद्ध नियम की केंद्रित अभिव्यक्ति है। यह केवल
अंडाणु को निषेचित नहीं करता—यह हजारों पीढ़ियों की लय, आत्मा का प्रकाश,
और सत्य के अनुरूप जीवन की संभावना लेकर चलता है।

जैसे शिव का पसीना बन जाता है नर्मदा,

वैसे ही गुरु कण बनता है जीवन की नदी।

पर हम केवल जीवविज्ञान तक न रुकें। नदी केवल बच्चे का रूपक नहीं है—यह ज्ञान
की अभिव्यक्ति भी है।

इस कण से केवल रूप नहीं आता, बल्कि कार्य आता है।

केवल जीवन नहीं, बल्कि नियम आता है।

केवल वृद्धि नहीं, बल्कि मार्गदर्शन आता है।

इसीलिए नचिकेता—गुरु कण—यम के पास जाना पड़ता है। क्योंकि इस बूंद का पुत्र उन नियमों को सीखता है जो अस्तित्व को नियंत्रित करते हैं, और उन्हें संसार में व्यक्त करता है।

इस दृष्टि से, भृंग की ईर्ष्या स्पष्ट हो जाती है।

यह शक्तिशाली प्राणी—जो स्पंदनों को समझ सकता है, परिपूर्ण संतुलन से उड़ सकता है, और जटिल बुद्धि से मधु बना सकता है—गुरु कण के नृत्य के पवित्र प्रभाव की बराबरी नहीं कर सकता।

जो गुरु कण बनाता है, जब वह नियम के अनुरूप होता है और शिव की ज्योति से प्रज्वलित होता है, वह एक ऐसा प्राणी बनता है जो संसार को थाम सकता है।

इसलिए श्लोक केवल नदियों के बारे में नहीं है।

यह उत्पत्ति और परिणाम के बारे में है।

बीज और धारा के बारे में है।

कैसे एक बूंद—जब वह सही स्पंदन लेकर आती है—एक पूरा मार्ग बन सकती है।

फिर सोचिए: नर्मदा शिव के पसीने से क्यों बनी?

क्योंकि पसीना एक प्राकृतिक, मौन स्राव है—जबरदस्ती नहीं, हिंसात्मक नहीं, भारी नहीं। यह तब प्रकट होता है जब आंतरिक अग्नि नृत्य कर रही हो, जब गति दिव्य हो। यह सहज प्रयास है। यह तप का द्रव रूप है।

ठीक वैसे ही गुरु कण, जब जागरूकता, संयम, और बुद्धिमान जीवन से उत्पन्न होता है, तो वह बोझ नहीं—आशीर्वाद होता है। वह कलंकित नहीं—प्रकाशमान होता है। वह ध्यान मांगता नहीं—सिर्फ नर्मदा बन जाता है, धीरे-धीरे संसार को आकार देता है।

इसलिए ऋषि उसके किनारे निर्भय होकर चलते हैं।

इसलिए उसके तट शुद्ध होते हैं—केवल जल रसायन विज्ञान से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक स्मृति से।

और अब हम समझने लगते हैं कि असली सृष्टि क्या है।

यह केवल कोशिकाओं का जुड़ाव नहीं है।

यह केवल गर्भधारण नहीं है।

यह एक ऐसी तरंग पैदा करना है जो सत्य के साथ - क्लितम के साथ रहती है, लंबे समय बाद भी जब बूंद गायब हो चुकी होती है।

तो यह संदेश तुम्हारे हृदय में तरंगित हो:

बूंद महत्वपूर्ण है।

नृत्य महत्वपूर्ण है।

जो स्पंदन तुम लेकर चलते हो वह महत्वपूर्ण है।

एक शुद्ध क्रिया...

एक तपस्वी श्वास...

एक गुरु कण जो सही सोच और लय से उत्पन्न हो...

एक नियम की नदी, एक ज्ञान की धारा।

ललिता देवी

आइए अपनी दृष्टि अंदर की ओर करें—यह न देखें कि गुरु कण क्या है, बल्कि यह देखें कि उसे क्या चलाता है। क्योंकि सबसे ज्योतिर्मय बीज भी निर्जीव होता है जब तक वह

नहीं हिलता। और वह हिलना, वह दिव्य धक्का, वह गति जो स्थिरता के भीतर होती है—वह है शक्ति।

हमारी परंपरा में, हम अक्सर शिव को स्रोत, साक्षी, मौन स्वरूप के रूप में देखते हैं। लेकिन वह शक्ति है—जो नाचती है, जो चलाती है, जो खेलती है। उसका सबसे सुंदर नाम है ललिता—वह जो सहजता से खेलती है। वह कोई दूर की मूर्ति नहीं, मंदिरों में स्थापित देवता नहीं। वह हमारी उसी ऊर्जा का स्वरूप है जो स्वास चलाती है, विचार उत्पन्न करती है, और गुरु कण को गति देती है।

गुरु कण — अर्थात् वह शुक्राणु, जिसके बारे में हमने बात की — बस बहता नहीं, वह तैरता है। वह घूमता है। वह दिशा के साथ धड़कता है। और यह लय मांसपेशी से या संयोग से नहीं आती। यह आती है शक्ति से।

हमारे सूक्ष्म शरीर में तीन ग्रंथियाँ मानी जाती हैं—

ब्रह्मा ग्रंथि, रीढ़ की हड्डी के आधार पर, सृष्टि और रूप के प्रति आसक्ति को नियंत्रित करती है।

विष्णु ग्रंथि, हृदय के पास, संबंधों और भावनात्मक पहचान से जुड़ी है।

रुद्र ग्रंथि, भौंहों और सिर के मुकुट के बीच, अंतर्ज्ञान, विमुक्ति और विरक्ति की रक्षक है।

और इन्हें खोलती कौन है? ललिता।

वह तय करती है कि आपका गुरु कण बच्चा बने या मन्त्र। वह शरीर बनाए या कोई पुस्तक, कोई विचार, कोई सेवा कार्य जन्म दे। माइक्रोस्कोप के नीचे भी शुक्राणु की पूँछ नाचती सी लगती है। क्या यह ललिता का खेल नहीं?

वह धक्का नहीं देती। वह आमंत्रित करती है। वह चिल्लाती नहीं। वह गाती है।

इसीलिए देवी की पूजा डर से नहीं, बल्कि सुगंध से की जाती है। नियमों से नहीं, रस से की जाती है—स्वाद से। और समझें कि ललिता केवल कोमल या मधुर नहीं है। वह काली भी है, अज्ञानता की उग्र नाशक। वह लक्ष्मी है, जो अनंत पोषण करती है। वह सरस्वती है, हर श्लोक, हर राग, हर मंत्र के पीछे की प्रेरणा। वह वह क्षेत्र है जहाँ शिव का बीज जड़ें जमाता है।

इसके बिना गुरु कण बिन हवा की बाँसुरी की तरह है। खोखला, मौन, निष्क्रिय।

हम उसकी मौजूदगी महान व्यक्तियों के जीवन में देखते हैं। श्री कृष्ण - जगद्गुरु, लीला में मग्न थे फिर भी धर्म में स्थिर। उनका गुरु कण प्रेम और खेल में भी बिखरा नहीं। वे नाचे, पर बहके नहीं। छुआ, पर गिरे नहीं। यही है गति में महारत—यह है ललिता भीतर।

या आदि शंकराचार्य देखें—ब्रह्मचारी, तीव्र, तार्किक, फिर भी माता के भक्त। वे ललिता और काली की स्तुतियाँ गाते हुए वेदांत पर सूक्ष्म, तीव्र टीकाएँ लिखते थे। यह भी संतुलन है—शक्ति का नकार नहीं, बल्कि उसकी उन्नति।

सच्चा ब्रह्मचर्य ऊर्जा का दमन नहीं, शक्ति के साथ मेल है। उसके साथ चलना—पीछे नहीं, उससे डरकर नहीं—पर समरसता से। हर श्वास में उसकी उपस्थिति का सम्मान करना। और समझना कि हमारे अंदर की हर रचनात्मक शक्ति उसी की है।

हमारा क्रोध भी, यदि शुद्ध हो, तो काली बन जाता है। हमारा प्रेम, यदि सही रूप से दिया जाए, तो लक्ष्मी बन जाता है। हमारी वाणी, यदि पवित्र हो, तो सरस्वती बन जाती है।

इसलिए प्रश्न यह नहीं कि क्या मेरे पास शक्ति है?

प्रश्न यह है कि क्या मैं उसका सही उपयोग कर रहा हूँ?

क्योंकि अप्रयुक्त शक्ति बेचैनी बन जाती है। अनियंत्रित शक्ति अराजकता बन जाती है। अनादर की गई शक्ति दुःख बन जाती है।

इसीलिए प्राचीन संस्कार, मंत्र, और मुद्रा केवल प्रतीकात्मक नहीं थे—वे उसकी ऊर्जा को ऊपर उठाने के मार्ग थे। वे दिखाते थे कि कैसे ग्रंथियों को धीरे-धीरे खोलें, कैसे शक्ति को स्वाभाविक रूप से फैलने दें।

यहाँ तक कि दीप जलाना भी छोटा काम नहीं—यदि सचेत होकर किया जाए। ललिता सहस्रनाम के एक भी पद को उपस्थित मन से जपना भी आंतरिक परिवर्तन के लिए उत्तोलन बन जाता है।

पर ध्यान रहे: शक्ति को बिना दिशा के आह्वान करना ऐसा है जैसे बिना खिड़कियों वाले घर में पवन बुलाना। वह वेग से हिलाता है, तोड़ता है, डराता है।

यह वेद को जीने की प्राचीन कला है।

आइए नवरात्रि का उदाहरण लें।

हममें से कई लोग देवी के नौ रात्रि उत्सव मनाते हैं।

पर बहुत कम लोग जानते हैं—ये रातें संयोग से नहीं चुनी गईं।

ये पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर झुकाव के मौसमी संक्रमण के आस-पास पड़ती हैं।

ये ब्रह्माण्डीय दबाव के बिंदु हैं।

और उन दिनों मानव तंत्रिका तंत्र संवेदनशील हो जाता है—शारीरिक, मानसिक, और ऊर्जा स्तर पर।

इसलिए ऋषियों ने हमें संस्कार दिए—

केवल उत्सव के लिए नहीं, स्थिरता के लिए।

नौ रातों तक जप, उपवास, प्रार्थना, नृत्य—

देवताओं को प्रभावित करने के लिए नहीं,
बल्कि स्वयं को पृथ्वी की बदलती धुरी के साथ जोड़ने के लिए।
समझदारी से करें—तो आप लहर पर सवार हैं।
बिना समझ के करें—तो भी आप सुरक्षित हैं।
पर पूर्ण आत्मसात करके करें—तो आप स्वयं लहर बन जाते हैं।
क्रितम के साथ।
यहाँ तक कि दीपक जलाना भी यदि सचेत होकर किया जाए, तो भीतर की ज्योति को
जागृत करता है।
आप विज्ञान जानें या न जानें, दीपक फिर भी जलता है।
यह धर्म की कृपा है।
और यह कितना अद्भुत स्थापत्य है यह धर्म।
सब कुछ सबका प्रतिबिंब है।
बृहद सूक्ष्म का आईना है।
संस्कार मनोविज्ञान की प्रतिध्वनि है।
ज्योतिष शरीर विज्ञान का प्रतिबिंब है।
मंदिर शरीर का।
भोजन अग्नि का।
यह आदेशों का धर्म नहीं है।
यह एक बुद्धिमत्ता प्रणाली है,

जहाँ हर क्रिया—जप, स्नान, भोजन बनाना, वस्त्र धारण करना—

सृष्टि के शाश्वत पैटर्न की प्रतिध्वनि करती है।

और इस नाजुक धागे को सदियों तक थामे रखने के लिए—

आइए हम उन्हें नमन करें उन पुरोहितों, ब्राह्मणों और साधकों को, जो बिना विघ्न के
जप करते रहे,

जो साम्राज्यों के पतन पर भी दीप जलाते रहे,

जो जब पांडुलिपियाँ जल रही थीं तब मंत्रों की रक्षा करते रहे।

वे केवल समारोह संचालक नहीं थे।

वे न्यूरो-आध्यात्मिक इंजीनियर थे।

वे जानते थे जीभ का कोण,

श्लोक की छंदबद्धता,

चंद्रमा की धड़कन,

सूरज की स्थिति,

और उन संस्कारों के समय को जो राष्ट्र की रीढ़ को मजबूत रखते थे।

पर प्रिय, याद रखें:

संरक्षण पवित्र है और आवश्यक है।

पर उपयोग उससे भी दुर्लभ है।

जप करना आसान है।

महसूस करना कठिन।

और सबसे कठिन है... स्वयं जप बन जाना।

और यही हमारा अगला कर्तव्य है।

जैसे गुरु कण शरीर में निष्क्रिय रहता है जब तक सक्रिय न हो,

वैसे ही संस्कार पृष्ठ पर सपाट रहता है—जब तक आप उसे जीवित न करें।

प्राचीन मार्गों को इसलिए न अस्वीकारें क्योंकि आप उन्हें अभी समझ नहीं पाए हैं।

बल्कि—करीब आएं।

धीरे जप करें।

गहरी सांस लें।

अक्षर को रीढ़ की घंटी बजाने दें।

गुरु कण को ध्वनि के साथ उठने दें।

अपने शरीर को मंदिर बनाएं,

अपनी जीभ को पुरोहित,

और अपनी श्वास को अर्पण।

तब आपको ब्रह्मचर्य समझाने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

आप उसे स्वयं विकीर्ण करेंगे।

आत्मा उठेगी, अक्षर दर अक्षर।

उच्चारण —

जैसे-जैसे हम प्राचीन ज्ञान के वन में गहराई से प्रवेश करते हैं, आइए एक क्षण के लिए रुकें—मौन में नहीं, बल्कि ध्वनि में।

क्योंकि भारतीय परंपरा में ध्वनि केवल कम्पन नहीं है। यह जन्म है। हमारे ऋषि केवल दार्शनिक नहीं थे। वे ध्वनि-कारीगर थे—सूक्ष्म तरंगों के अभियंता।

जो भी अक्षर उन्होंने किसी ग्रन्थ के आरंभ में रखा, वह संयोग नहीं था।

वह एक बीज था, अर्थ से अभिभूत एक कम्पन, जिसे साधक के भीतर एक विशिष्ट नियम जागृत करने के लिए डिज़ाइन किया गया था।

किसी ग्रन्थ का नाम केवल एक शीर्षक नहीं था—वह एक मंत्र था।

एक उदाहरण लें: कठोपनिषद।

किसी भी कथा के खुलने से पहले—नचिकेता से पहले, यम के साथ भेंट से पहले, जीवन और मृत्यु के संवाद से पहले—

एक अकेला अक्षर है: क (Ka) ।

छोटा, सरल, पर ब्रह्मांडीय।

संस्कृत ब्रह्मांडशास्त्र में, क का अर्थ है उत्पत्ति—सृजन, आरंभ, उद्भव।

यह जन्म का अक्षर है।

और कठोपनिषद क्या है अगर उत्पत्ति की कथा नहीं?

यह उस बालक की कहानी है जो पिता की दुनिया से विदा लेकर मृत्यु के क्षेत्र में प्रवेश करता है, और शाश्वत आत्मा की खोज करता है।

यह गुरु कण का पृथ्वी के गर्भ में उतरना है, धर्म के क्षेत्र में प्रवेश है।

यह सृजन का नियम है जो आत्मा की यात्रा स्वीकार करता है।

इस दृष्टि से क केवल एक अक्षर नहीं, बल्कि ब्रह्मचर्य का पहला कदम है।

क को सही उच्चारण से कहना—ना जल्दी, ना यांत्रिक, बल्कि नाभि से, जागरूकता के साथ—एक कम्पनशील नियम को सक्रिय करना है।

यह शरीर में नए चक्र की घंटी की तरह गूँजता है।

यह कोशिकाओं को संकेत देता है: एक नई शिक्षा प्रारंभ होने वाली है।

हर उपनिषद इसी तरह शुरू होता है—एक चाबी के साथ।

और हर किल्ली साधक के भीतर एक विशिष्ट ऊर्जा मार्ग खोलती है।

यदि एक अक्षर इतनी गहराई समेट सकता है, तो हमारे सभी ग्रंथों के नामों में क्या छिपी संभावनाएँ होंगी?

यह कोई साहित्यिक सजावट नहीं।

यह सुंदर वास्तुकला है।

कठोपनिषद को सचेत होकर कहें। जाने कि वह ध्वनि आपके शरीर में कैसे उतरती है।

अब कहें: कैवल्य। कथा। कर्म। काम। कला।

सभी 'क' से जन्मे हैं—उत्पत्ति की थाप, बनने की कम्पन।

यह संयोग नहीं, नियम है।

ऋषियों को पता था कि ध्वनि रूप से पहले आती है।

नाद ब्रह्म—ध्वनि ही ईश्वर है।

ध्वनि सजावट नहीं, उत्पत्ति है।

इसलिए उन्होंने ग्रंथों को न केवल अर्थ से, बल्कि गूँज से बनाया।

नाम एक आवृत्ति थी—एक संकेत।

मंत्र जपना, श्लोक पढ़ना, या ग्रंथ के नाम को सचेत होकर उच्चारित करना, ब्रह्माण्ड के शरीर के सूक्ष्म दबाव बिंदु को छूना है।

आयुर्वेद के मार्म बिंदुओं की तरह, हर नाम हमारे भीतर एक विशेष ऊर्जा चैनल को उत्तेजित करता है।

कठोपनिषद का सही उच्चारण उत्पत्ति के नियम के साथ सामंजस्य बैठाना है—
रचनात्मक अवतरण का नियम।

ब्रह्मचर्य दबाव नहीं, आह्वान है।

नियंत्रण नहीं, बल्कि संरेखण है।

मौन नहीं, ध्वनि की गति है।

इसीलिए उच्चारण को आदर मिला।

नामों की रक्षा मंत्र की तरह की गई।

बच्चों को केवल क्या कहना है नहीं, कैसे कहना है यह सिखाया गया।

बिना जागरूकता के उच्चारण ऐसा है जैसे किसी दरवाजे पर खटखटाना और चल देना।

पर उन्हें पूर्ण उपस्थित होकर कहना—चाबी घुमाना है।

उपनिषद केवल ग्रंथ नहीं।

वे कम्पन मानचित्र हैं।

हर अक्षर एक कम्पास है।

हर नाम एक दिशा है।

और हर दिशा एक विशिष्ट परिवर्तन की ओर ले जाती है।
यात्रा पहली कविता से नहीं, बल्कि पहली ध्वनि से शुरू होती है।
यह भी ब्रह्मचर्य है।
निग्रह/ संयम/ बचना नहीं, अनुराग है।
विराम नहीं, शुद्धता है।
पहला अक्षर आत्मा का मार्ग पर पहला पदचिह्न है।
और यदि हम ध्यान से सुनें, तो पूरी यात्रा उसमें गूँजती है।
हर प्रारंभिक अक्षर, हर मौलिक स्वर में सम्पूर्ण शिक्षा का मानचित्र छुपा है।
वे हमें बताते हैं कि ग्रंथ हमें कहाँ ले जाएगा।
वे दर्शाते हैं कि कौन-सी ऊर्जा जागृत होगी।
और वे साधक को मार्गदर्शन देना शुरू करते हैं, पहले श्लोक से पहले ही।
ब्राह्मचर्य का अर्थ है सुर में रहना।
जागरूक होकर बोलना।
श्रद्धा के साथ जपना।
सटीकता के साथ।
यह मानना कि हर ध्वनि एक बीज है, और हर बीज में पूरा वृक्ष छुपा है।
ऐसी है प्रथम ध्वनि की बुद्धि।
ऐसा है नामकरण का विज्ञान।
ऐसी है ब्रह्मचर्य की राह।

महाभारत

छांदोग उपनिषद् पंच अग्नि—पाँच अग्नियों, पाँच तत्त्वों की क्रिया का वर्णन करता है। ये अमूर्त नहीं, बल्कि अवतारित हैं।

और यह अवतार महाभारत में सबसे जीवंत है, जहाँ पाँच पांडव तत्वीय धर्म के जीवित स्वरूप बनते हैं।

युधिष्ठिर सबसे बड़े, आकाश (अकाश) के अनुरूप हैं—व्योम, अन्तरिक्ष। उनका मन विशाल, निर्णय निर्मोही, और धर्म अडिग है। वे आकाश जैसे—व्यापक, मौन, और सर्वग्राही। उनका ब्रह्मचर्य मानसिक है—वे धैर्य नहीं खोते, चाहे पासा उनके विरुद्ध क्यों न पड़े। उनकी सत्यता कालिक नहीं, ब्रह्मांडीय है।

भीम दूसरे, वायु (वायु), गति, और बल के हैं। उनकी शक्ति अप्रतिम, भूख विशाल। वे युद्ध की श्वास, न्याय का तूफान हैं। उनका ब्रह्मचर्य शारीरिक है—शरीर शक्ति का मंदिर है, पर लिप्सा का नहीं। वे आनंद के लिए नहीं, धर्म के लिए लड़ते हैं।

अर्जुन तीसरे, अग्नि (अग्नि), फोकस, और परिवर्तन के हैं। उनके तीर ज्वाला, दृष्टि तीव्र। वे धर्म की जलती इच्छा हैं। उनका ब्रह्मचर्य भावनात्मक है—वे गहराई से महसूस करते हैं, पर भावना को लक्ष्य भटकाने नहीं देते। निराशा में भी वे सुनते हैं, उलझन में भी कार्य करते हैं।

नकुल चौथे, जल (जल), सौंदर्य, और अनुकूलन के हैं। वे अश्वशासक, कोमल योद्धा, और अनुग्रह के प्रतिबिंब हैं। उनका ब्रह्मचर्य सौंदर्यपूर्ण है—वे शालीनता से चलते हैं, समर्पण से सेवा करते हैं। वे बहते हैं, पर बाढ़ नहीं लाते।

सहदेव पांचवे, पृथ्वी (पृथ्वी), स्थिरता, और ज्ञान के हैं। वे मौन ज्ञानी, ज्योतिषी, और चिकित्सक हैं। उनका ब्रह्मचर्य बौद्धिक है—वे ग्रहणशील, समझदार, और स्थिर। वे कम बोलते हैं, पर जब बोलते हैं तो पहाड़ों के वजन के साथ।

ये पाँच भाई केवल पात्र नहीं, बल्कि उपनिषदों में वर्णित पंच अग्नि हैं। वे गुरु कणों का जीवित क्षेत्र हैं, जो दुनिया के साथ अलग-अलग तत्वीय दृष्टिकोण से संवाद करते हैं।

और इन सबके ऊपर, इस पूरी नाटक को संचालित करते हैं—कृष्ण—केशव—महाभारत की आत्मा।

कृष्ण तत्वों से बंधे नहीं हैं—वे तत्वों के संगीतकार हैं। वे गति में शिव, खेल में ब्रह्म हैं। वे लड़ते नहीं, फिर भी हर युद्ध जीतते हैं। वे आदेश नहीं देते, फिर भी हर योद्धा झुकता है। उनका ब्रह्मचर्य दिव्य है—वे पूर्णतः जुड़ते हैं, फिर भी अप्रभावित रहते हैं। वे माया के साथ नृत्य करते हैं, पर आत्मा नहीं भूलते।

और फिर हैं हनुमान—अर्जुन की रथ पर बैठे, मौन, सतर्क, शुद्ध। हनुमान रुद्र हैं, पवित्रता के रक्षक। वे केवल मंदिरों में नहीं, हर गांव में, हर सिंदूर लगे पत्थर पर पूजित हैं। वे केवल शारीरिक नहीं, ऊर्जा के संपर्क के रक्षक हैं। जहां भी ऊर्जा टकराती है, हनुमान उसे भ्रष्ट होने से रोकते हैं। वे बल के ब्रह्मचारी हैं—निराश्रयता से नहीं, महारत से।

मानव शरीर में ग्यारह रुद्र लगातार कार्यरत रहते हैं। वे पचाते, परिवर्तित करते, और शुद्ध करते हैं। उनमें धनंजय आत्मा के प्रस्थान का निरीक्षण करता है, सुनिश्चित करता है कि मृत्यु भी स्वच्छ संक्रमण हो। यह पौराणिक कथा नहीं, रूपक में जीवविज्ञान है। महाभारत केवल कहानी नहीं, एक मार्गदर्शिका है। यह दिखाता है कि गुरु कण कैसे चलता है, कैसे संपर्क करता है, कैसे आरोहण करता है।

जब कृष्ण अर्जुन को गीता में मार्गदर्शन देते हैं, तो वे भीतर के अग्नि को सक्रिय कर रहे होते हैं।

जब युधिष्ठिर जीत के लिए झूठ नहीं बोलते, तो वे आकाश से सामंजस्य स्थापित कर रहे होते हैं।

जब भीम दुर्योधन की जांघ तोड़ते हैं, तो वे क्रूर नहीं, वायु का संचार कर रहे होते हैं।

जब नकुल घायल को ठीक करता है, तो वे केवल मदद नहीं, जल के साथ बह रहे होते हैं।

जब सहदेव तारों का अध्ययन करते हैं, तो वे भाग्य नहीं पढ़ते, पृथ्वी की सुन रहे होते हैं।

और जब हनुमान मौन बैठा होता है, तो वह निष्क्रिय नहीं, विष का निष्कासन है।

यही ब्रह्मचर्य है—न ब्रह्मचर्य का अर्थ है संयम, पर सामंजस्य।

न वापसी, पर महारत।

न अस्वीकृति, पर शुद्धता।

हर पांडव इसे अलग तरह से जीता है, हर तत्व अलग रूप में प्रकट होता है, पर मूल सिद्धांत एक है: गुरु कण को सुर में चलना चाहिए।

और इस प्रकार हम सार पर लौटते हैं:

ब्रह्मचर्य नियम नहीं, गूँज है।

यह आंतरिक वाद्य को ब्रह्मांडीय गीत से मिलाना है।

जब गुरु कण सुर में गाता है, तो दुनिया प्रतिक्रिया देती है।

बारिश होती है। शांति छा जाती है। धर्म उभरता है।

यह कल्पना नहीं।

यह क्रिया है।

यह मिथक नहीं।

यह स्मृति है।

पांडव गए नहीं—वे भीतर हैं। कृष्ण बीते नहीं—वे वर्तमान हैं। हनुमान कथा नहीं—वे
वे रुद्र हैं, पवित्रता के रक्षक।

रुद्र अभिषेक एवं एकादशी व्रत - फलश्रुति एक सी - विष का उचित मार्ग से निष्कासन
एवं अमृत का रक्षण।

ब्रह्मचर्य जीना है, जैसे वे जीते—न पूर्णता से, पर सचेत होकर।

न कठोरता से, पर लय से।

न भय से, पर स्वतंत्रता से।

ऐसी है तत्वीय अवतार की राह।

ऐसा है महाभारत का क्षेत्र।

ऐसी है गुरु कण का विज्ञान।

और ऐसी है ब्रह्मचर्य की गीता - गीता।

द्रौपदी जुड़वां भाई धृष्टद्युम्न

अग्नि से उत्पत्ति

रुक्मिणी के भाई रुक्मी

गांधारी के भाई शकुनि

शक्ति का रक्षक कौन?

एकादश रुद्र, इंद्र, प्रजापति, द्वादश आदित्य, अष्ट वसु - तैंतीस देवता?

ब्रह्मचर्य और राजा की भूमिका

आइए, हम राजा की अवधारणा के साथ कुछ समय बैठें — न कि वह छवि जो राजनीतिक इतिहास ने हमें दी है, बल्कि वह उत्तम रचना जो वेद, पुराण और महाकाव्यों में बुनी गई है। प्राचीन भारत में राजा केवल मनुष्यों और भूमि का शासक नहीं था। वह धर्म का जीवित यंत्र था, पृथ्वी पर ब्रह्मांडीय नियम का पालन करने वाला।

धर्म क्या है, यदि वह अस्तित्व की ही लय नहीं? धर्म कोई कठोर नियम या धार्मिक अनुशासन नहीं। यह प्राकृतिक क्रम है — न्याय, संतुलन और सही समायोजन का पैटर्न जो संसार को बनाए रखता है। इस दृष्टि से, राजा विजय द्वारा नहीं, बल्कि सामंजस्य द्वारा राजा था। वह यमराज था — केवल मृत्यु के स्वामी नहीं, बल्कि स्वयं कानून का अवतार। इसलिए सिंहासन कोई अधिग्रहण नहीं, बल्कि शुद्धता, अनुशासन और सेवा से अर्जित होता था।

इक्ष्वाकु वंश के रत्न, राजा राम, ऐसे धर्मराज्य के उच्चतम उदाहरण हैं। छात्र से लेकर शासक बनने तक, वे कोई अभिनय नहीं कर रहे थे — वे धर्म की विज्ञान को पूर्णता से जी रहे थे। यही उन्हें ब्रह्मचारी बनाता है — केवल ब्रह्मचर्य नहीं, बल्कि हर कोशिका, हर कर्म, हर विचार सत्य के अनुरूप। आइए, उनके जीवन के चरणों को देखें, न केवल उनकी स्तुति के लिए, बल्कि यह समझने के लिए कि ब्रह्मचर्य कैसे सांसारिक कर्तव्यों के बीच भी जिया जा सकता है।

गुरुकुल में युवा राजकुमार राम ने दुर्लभ तरह की मानसिक एकाग्रता दिखाई। वे अंदर से स्थिर थे, पर बहिर्मुखी नहीं। उनके प्रश्न इतने गहरे थे कि ऋषि वशिष्ठ को योग वशिष्ठ के रूप में दर्शन और योग पर संवाद करना पड़ा। यह मानसिक ब्रह्मचर्य — शुद्ध विचार की शुरुआत थी।

संतान के रूप में, वे बिना कोई शिकायत किए आज्ञाकारिता देते थे। जब पिता, राजा दशरथ, वचनबद्ध होकर उन्हें चौदह वर्षों के वनवास भेजते हैं, तो वे शांति से स्वीकार करते हैं—यह जानते हुए कि नियम हमेशा सही होता है, भले वह गलत लगे। यहीं पुत्र धर्म और ब्रह्मांडीय लय मिलती है।

पति के रूप में, उन्होंने सागर पार किए और राक्षसों से युद्ध किया — सीता के स्वामित्व के लिए नहीं, बल्कि उनकी रक्षा के लिए। ईर्ष्यालु नहीं, बल्कि पवित्र संबंध के रक्षक के रूप में। उनका प्रेम प्रबल था, पर स्वामित्वहीन। यह भी ब्रह्मचर्य है।

योद्धा के रूप में, उन्होंने शिव के दिव्य धनुष को उठाया और तोड़ा—शक्ति दिखाने के लिए नहीं, बल्कि तैयार रहने का प्रतीक। केवल जो आंतरिक शक्ति पर प्रभुत्व रखता है, वही बाहरी शक्ति चला सकता है।

मित्र के रूप में, वे सुग्रीव के साथ खड़े हुए और बाली का सामना किया—व्यक्तिगत प्रतिशोध के लिए नहीं, बल्कि सत्य स्थापित करने के लिए। शासक के रूप में, उन्होंने अकल्पनीय किया। जब धोबी के संदेह ने सीता के चरित्र पर छाया डाला, तो राम ने उन्हें वनवास भेज दिया। यह प्रेम का अभाव नहीं, बल्कि पीड़ादायक धर्म था। जनता का कल्याण सर्वोपरि था। सच्चा राजा स्वयं का नहीं होता।

भाई के रूप में, वे लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न के साथ पूर्ण सामंजस्य में रहे। उन्होंने अपने भाइयों को एकपत्नीवाद का पालन करने के लिए प्रेरित किया, जबकि समाज में अन्य प्रचलित था। उन्होंने आदेश नहीं दिया, प्रेरणा दी। अपने जीवन से धर्म का मानक स्थापित किया।

पिता के रूप में, जब लव और कुश ने अनजाने में युद्ध में चुनौती दी, तो उन्होंने तीर नहीं चलाए। राजा दुश्मन से लड़ सकता है, पिता पुत्रों के प्रति झुकता है।

ये सभी भूमिकाएं ग्रहों की कक्षा की तरह थीं — कभी केंद्र से टकराई नहीं, हमेशा संतुलन में, धर्म के चारों ओर घूमती रहीं। राम का जीवन केवल कथा नहीं था। यह एक

प्रदर्शन था। उनके गुरु कण की गति — उनकी सृजनात्मक और धर्मिक शक्ति — ग्रहों की गति के समान थी।

जैसे पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, वैसे राम बारह अवतारों में चले: इक्ष्वाकुनन्दन, अहल्या उद्धारक, वनमाली राम, सुन्दरम राम, दशमुखांतक राम आदि। हर चरण एक ऋतु, हर नाम एक राशि। राम धर्म का सूर्य बने, और उनके चारों ओर प्रकाश की खोज करने वाले घूमे।

फिर भी, धर्म हमेशा एक ही रूप में नहीं रहता। अगर राम सूर्य थे—स्थिर, दीप्तिमान, और बलिदानी—तो कृष्ण बिजली थे: अचानक, प्रकाशमान, और परिवर्तनकारी। महाभारत में कृष्ण सिंहासन से नहीं, बुद्धि, रणनीति, और दिव्य खेल से शासन करते थे। वे नियमों को तोड़ने के लिए नहीं, धर्म पुनर्स्थापित करने के लिए मोड़ते थे। उन्होंने हथियार नहीं उठाए, फिर भी युद्ध चलाया। उन्होंने अर्जुन को आदेश नहीं दिए, बल्कि आत्मा को छूने वाले प्रश्न पूछे। भगवद् गीता उपदेश नहीं, दर्पण थी। कृष्ण ने अर्जुन से आज्ञाकारी बनने को नहीं कहा, जागने को कहा।

यह भी ब्रह्मचर्य है — कर्म से दूर नहीं, कर्म में शुद्धता। कृष्ण का नृत्य तुच्छ नहीं, ब्रह्मांडीय था। उनकी मुस्कान भागना नहीं, ज्ञान थी। उन्होंने दिखाया कि धर्म केवल नियम नहीं, कभी-कभी मुक्ति है। ब्रह्मचर्य केवल संयम नहीं, शाश्वत आत्मा के साथ सामंजस्य है।

और फिर था युधिष्ठिर, मानव राजा, जो राम के बलिदान और कृष्ण की रणनीति के बीच खड़ा था। युद्ध के बाद, वे गर्व से सिंहासन नहीं बैठे। मुनि नारद आए — न कि प्रशंसा के लिए, बल्कि सवाल करने के लिए। “क्या हर गांव में पानी है?” “क्या जलाशय भरे हैं?” “क्या तुम्हारा राज्य ऋण मुक्त है?” जब ये सवाल सटीक और शुद्ध उत्तरों से परे हुए, तभी वे राजा बने। विजय के बाद भी, देखभाल और जिम्मेदारी का धर्म सर्वोपरि था।

तो हम देखते हैं: राजा शक्ति का प्रतीक नहीं था। वह ब्रह्मांडीय व्यवस्था का सेवक था। राजदंड हथियार नहीं, सुरमंडल था, जो ब्रह्मांड के तालमेल से गूंजता था। जहाँ धर्म राज करता था, वहाँ बारिश समय पर आती, बच्चे बुद्धिमान बनते, और शांति फैलती।

यह मिथक नहीं। यह स्मृति है।

यह कल्पना नहीं। यह क्रिया है।

और राम, जैसे शांत तालाब की बूंद, आज भी इस भूमि के विवेक में लहरें पैदा करते हैं। कृष्ण, जैसे तूफान का गरजता बिजली, माया को तोड़कर आत्मा प्रकट करते हैं। युधिष्ठिर, जैसे पर्वत, संशय की हवाओं में अडिग खड़े हैं।

उनका पालन करना जीवन से पीछे हटना नहीं—बल्कि उसमें उठना है, जैसे सूरज जो कभी थकता नहीं।

ऐसी है धर्मराज की राह।

ऐसी है सच्चे ब्रह्मचर्य की स्थिति।

जहाँ शासक धर्म का पालन करते हैं, वहाँ प्रकृति भी झुकती है।

जहाँ ब्रह्मचर्य फलता-फूलता है, वहाँ राज्य समृद्ध होते हैं।

और जहाँ दोनों मिलते हैं, वहाँ राम खड़े होते हैं—अनन्त, अडिग, सम्पूर्ण।

ब्रह्मचर्य—कृष्ण के हृदय में

अब हम अपनी दृष्टि को उस दिव्य पुरुष की ओर मोड़ें—श्रीकृष्ण की ओर। यह समझने के लिए कि उनका जीवन स्वयं एक सूत्र है, एक जीवंत शास्त्र है ब्रह्मचर्य का। ऊर्जा का सर्वोच्च संतुलन, उद्देश्य की लयबद्धता, और दिव्यता की पूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में।

ब्रह्मचर्य क्या है?

अक्सर इसे एक व्रत, एक नियम, या विवाह और इंद्रिय जीवन से विरक्ति के रूप में देखा जाता है। परंतु यदि ऐसा हो, तो हमारे धर्म का हृदय ही छूट जाएगा—क्योंकि स्वयं कृष्ण उस जीवन के प्रतीक हैं।

और फिर भी, वही कृष्ण युद्ध के बीच खड़े होकर कहते हैं—

"यदि मैंने ब्रह्मचर्य का जीवन जिया है, तो यह ब्रह्मास्त्र निष्प्रभावी हो जाए।"

और वह अस्त्र—जिसकी शक्ति अतुलनीय थी—शांत हो गया।

परिक्षित, जो अभी गर्भ में थे, बच गए।

यह कैसे संभव हुआ?

कृष्ण के विवाह हुए थे। वे जीवन की पूर्णता में जीते थे। क्या वे संकीर्ण अर्थों में ब्रह्मचारी थे? नहीं।

पर क्या वे ब्रह्मचारी थे? निस्संदेह।

क्योंकि ब्रह्मचर्य केवल संयम नहीं है—यह ऊर्जा पर स्वामित्व है। यह स्पर्श की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि स्वामीत्व की उपस्थिति है।

ब्रह्मचर्य की परिभाषा

जब आपकी ऊर्जा, आपका बीज, आपकी वाणी, आपका विचार—सब एक ही दिशा में प्रवाहित हों।

न कि बिखरे हुए, न कि रिसते हुए।

बल्कि एक लेजर की तरह केंद्रित, चंद्रमा की तरह कोमल, और तारों की तरह स्थिर।

जब आपका गुरु कण आपकी इच्छा का पालन करे, न कि आपकी चंचलता का।

यही जीवन कृष्ण ने जिया।

नामों में छिपे रहस्य

उनके नाम—असंख्य, काव्यात्मक—केवल उपाधियाँ नहीं हैं, वे चाबी हैं।

- उन्हें माधव कहा गया। क्यों? बचपन में वे माखन चुराकर भागते थे। गोपियाँ पुकारतीं—"मा-धव! मत भागो!"
- "मा" यानी मत, "धव" यानी भागना।
- एक नाम जो शरारत से जन्मा, पर आनंद में गति को रोकने का संकेत देता है।
- उन्हें केशव कहा गया—क्योंकि वे शव नहीं थे, वे सदैव जाग्रत, सदैव जीवंत थे।
- वे **रणछोड़राय** कहलाए—जो रणभूमि छोड़ते हैं।
- वे चित्तचोर थे—मन के चोर।

सतत चलाय मान रहे। जय द्वारकाधीश ॥

वे **मधुसूदन** थे—केवल मधु नामक दैत्य के संहारक नहीं, बल्कि उस **मधुरता** के भी जो मोह उत्पन्न करती है—वह लालसा जो बंधन बन जाती है।

योगेश्वर की महिमा। विषाद योग से भी रति।

यहाँ तक कि उनका नाम कृष्ण नहीं, कृष्ण है—जिसका उच्चारण करते समय जीभ तालु और नासिका के ऊर्जा बिंदुओं को स्पर्श करती है, और शरीर के सुप्त केंद्रों को जागृत करती है।

हमारे ऋषि यह जानते थे। शब्द केवल ध्वनि नहीं थे—वे उपकरण थे।

ब्रह्मचर्य: एक जीवन पद्धति

इस लेख का उद्देश्य केवल ब्रह्मचर्य को परिभाषित करना नहीं, बल्कि उसकी गलत व्याख्याओं को शुद्ध करना है।

जैसे GPS में एक गलत दिशा हमें मीलों भटका सकती है, वैसे ही एक गलत परिभाषा पूरे आध्यात्मिक जीवन को भ्रमित कर सकती है।

जब धर्म, यम, ब्रह्मचर्य जैसे शब्दों को केवल अनुष्ठान या प्रतिबंध समझा जाता है, तो नियम स्वयं छिप जाता है।

परंतु धर्म कोई संप्रदाय नहीं है। धर्म एक लय है। एक विधि है जो हर वस्तु में अंतर्निहित है।

- भोजन में धर्म है—पाक कला शास्त्र।
- वस्त्र निर्माण में धर्म है—कंचुकी शास्त्र।
- नौका निर्माण में धर्म है—नौका शास्त्र।

हर वस्तु, हर आविष्कार की एक सही विधि होती है। वही उसका धर्म होती है।

इसी प्रकार, ब्रह्मचर्य जीवन का त्याग नहीं है—यह जीवन जीने की सही विधि है। यह ऊर्जा का धर्म है, बीज का नियम है।

कृष्ण: ब्रह्मचर्य के जीवंत प्रतीक

कृष्ण का जन्म हुआ अष्टमी की रात, घटते चंद्रमा के समय। वे चंद्र लय के पुत्र थे।

उनका जीवन चंद्रमा की गति के साथ बहता था—जिसकी ज्वार-भाटा हमारे मन की तरंगों को दर्शाती है।

जैसे चंद्रमा समुद्र को चलाता है, वैसे ही वह विचारों को भी चलाता है।

जैसे चंद्रमा घटता-बढ़ता है, वैसे ही हमारी इच्छाएँ, तरलताएँ, प्रवृत्तियाँ भी।

परंतु कृष्ण?

वे उन तरंगों पर सवार थे—पीड़ित नहीं, बल्कि माहिर नाविक की तरह।

वे कभी बहकते नहीं थे।

कभी लिस नहीं होते थे।

कभी अनुपस्थित नहीं रहते थे।

वे कर्म करते थे, पर स्थिरता से।

वे खेलते थे, पर सटीकता से।

वे प्रेम करते थे, पर विलीन हुए बिना।

यही है ब्रह्मचर्य

कृष्ण की तरह जीना संसार का त्याग नहीं है—यह संसार में कमल की तरह रहना है,
जो जल में खिलता है, पर जल से अछूता रहता है।

भक्ति ही ब्रह्मचर्य है।

या कहें, कृष्ण ही कर्मयोग हैं।

तो आइए, हम इस प्राचीन शब्द को पुनः अपनाएँ।

डर से नहीं, दीप्ति से कहें—

ब्रह्मचर्य केवल संयम नहीं है—यह स्पष्टता है।

यह अकेलापन नहीं है—यह संतुलन है।

यह पलायन नहीं है—यह स्वामीत्व के साथ एकीकरण है।

हमारी साँसें कृष्ण का नाम लें।

हमारे कर्म उनकी लय में बहें।

हमारी इंद्रियाँ उनकी बाँसुरी की तरह सुसंगत हों।

और तब, चाहे हम विवाह करें, बोलें, खेलें, संतानें पालें या राष्ट्र चलाएँ—हम फिर भी ब्रह्मचर्य के पथ पर चलेंगे।

संकोच में नहीं, बल्कि पूर्ण स्वतंत्रता में।

कृष्ण की तरह।

तो हे आत्मन,

जो कुछ भी हम करें—विवाह, वाणी, विचार, कर्म, प्रेम—वह प्रकृति की लय के साथ संगत होना चाहिए। यही है ऋतम्।

संस्कृत में 'ऋतम्' का अर्थ है प्रकृति का नियम, ब्रह्मांड की गति, जीवन की धारा।

यह कोई मानव निर्मित कानून नहीं, बल्कि सृष्टि का स्वाभाविक तंत्र है।

प्राचीन ऋषियों ने कहा—

"ऋतम् वदामि, सत्यम् वदामि"

अर्थात्—जो मैं कह रहा हूँ वह सत्य है, क्योंकि वह प्रकृति के नियमों के अनुरूप है।

क्योंकि ऋतम् ही सत्य है।

हमारे शरीर की क्रियाएँ, हमारी चेतना की गति, हमारी भावनाओं की लहरें—सब इसी ऋतम् के अधीन हैं।

यह भौतिक विज्ञान का यंत्रतंत्र भी इसी ऋतम् में समाहित है।

और यही एकमात्र सत्य है।

ब्रह्मचर्य भी तभी पूर्ण होता है जब वह ऋतम् के साथ चलता है।

न तो प्रकृति से विरुद्ध, न ही मन से बिखरा हुआ।

तो हे साधक,

जो भी करो—ऋतम् के साथ करो।

जो भी कहो—सत्य के साथ कहो।

जो भी जियो—कृष्ण की लय में जियो।

ऋतम् वदामि। सत्यम् वदामि।

दोनों दिशाओं में संस्कार —

हमारे ब्रह्मचर्य के सच्चे अर्थ की निरंतर खोज में, हम गुरु कण में अंतर्निहित तीन गुणों — सत्त्व, रजस् और तमस् — के गहरे अंतःक्रिया पर पहुँचते हैं। ये तीन गुण, जो शुक्राणु के प्रतीकात्मक रूप में तीन बिंदुओं द्वारा दर्शाए जाते हैं, अस्तित्व की विविध अभिव्यक्तियों के लिए उत्तरदायी हैं। सत्त्व शुद्धता और सामंजस्य है, रजस् इच्छा और गति है, और तमस् जड़ता और छिपाव है। ये केवल मानसिक अवस्थाएँ नहीं हैं—वे ब्रह्मांडीय सिद्धांत हैं, जो गुरु कण के माध्यम से विभिन्न स्तरों पर प्रकट होते हैं: स्थूल, सूक्ष्म, कारणात्मक, और अंततः महत्त्व — महान आदिम तत्त्व के रूप में।

इस पूरे क्रम को त्रिपुंड्र की तरह देखा जा सकता है — शिव के माथे पर तीन क्षैतिज रेखाएँ और उनके ऊपर एक बिंदु, या फिर ॐ के रूप में। यदि ॐ में पूँछ नीचे की ओर दर्शाई जाए, तो यह अधोरेतस् होता है — रचनात्मक ऊर्जा का भौतिक जगत में अवतरण। यदि पूँछ ऊपर की ओर हो, तो यह ऊर्ध्वरेतस् होता है — मुक्ति की ओर

ऊर्जा का आरोहण। प्रवाह की दिशा महत्वपूर्ण है। विवाहित व्यक्ति सामान्यतः अधोरेतस्वर्ग में आते हैं, जिनका गुरु कण नीचे की ओर प्रवाहित होता है, संतानोत्पत्ति और वंश निर्माण के माध्यम से फलता-फूलता है। लेकिन यह नीचे की ओर प्रवाह पतन नहीं, बल्कि सृजनात्मक शक्ति है। यह जीवन की खेती है।

गुरु कण में दिव्य ध्वनियों के बीज विद्यमान हैं। ऐंकार, सरस्वती की ध्वनि, ज्ञान और सृजनशीलता लेकर आती है। श्रींकार, महालक्ष्मी की ध्वनि, समृद्धि और आकर्षण समेटे है। ह्रींकार, महाकाली की ध्वनि, शक्ति और परिवर्तन की गूंज है। ये सब मिलकर ओंकार बनाते हैं — ब्रह्मांड की आदिम स्पंदन। जब यह गुरु कण नीचे की ओर बहता है, तो यह संतान और वंश के साथ फलता-फूलता है। जब यह ऊपर की ओर प्रवाहित होता है, तो यह सृजन के रहस्यों, ब्रह्म सूत्रों तक पहुँच प्रदान करता है। अतः संस्कार केवल एक दिशा में सीमित नहीं है। यह दोनों—नीचे और ऊपर—दोनों दिशाओं में है। यह जीवन भी है और मुक्ति भी।

मोक्ष तब प्राप्त होता है जब गुरु कण अपने तत्काल स्रोत से अलग हो जाता है — न केवल शारीरिक आवेग से, बल्कि पूरी वीर्य समूह पहचान से। यह परिष्कृत, रूपांतरित, और उच्चतर हो जाता है। इस अवस्था में यह समय से परे (कालातीत) हो जाता है। यह एक अनंत अवस्था में प्रवेश करता है, जहाँ प्रेरणा नहीं, केवल शुद्ध चेतना चलाती है।

गर्भाधान की प्रक्रिया में इस गुरु कण की यात्रा पर विचार करें। प्रवेश के क्षण में यह स्थूल होता है — एक भौतिक, दृश्यमान तत्वा अंडाणु में प्रवेश के बाद यह सूक्ष्म बन जाता है — एक सूक्ष्म योजना। फिर यह कारणात्मक शरीर बनता है — भविष्य के जीवन का बीज। अंडाणु स्वयं, एक बिंदी की तरह गोल, महत्त्व का प्रतीक है — व्यापक, ग्रहणशील सृजन स्थान। अतः गुरु कण सम्पूर्ण अस्तित्व की परतों में यात्रा करता है — भौतिक से सूक्ष्म तक, योजना से ब्रह्मांडीय पदार्थ तक।

फिर भी, अपनी शुद्धतम अवस्था में यह गुणातीत और कालातीत होता है। परंतु विरोधाभास यह है कि इसमें तीनों गुणों के आवेशित अणु और पृष्ठ में गति की शक्ति

बनी रहती है। यह अंडाणु के रिक्त स्थान में परस्पर क्रिया करता है, जो स्त्री के शरीर के भीतर सृजन का एक और कक्ष होता है। स्त्री शरीर स्वयं इस जटिल क्रिया को अपनी भौतिक संरचना में सहज करता है। गुरु कण या बृहद कण, क्षेत्र में कार्य करता है। यहाँ क्षेत्र से तात्पर्य स्त्री से है — सृजन की ग्रहणशील भूमि — और क्षेत्रज्ञ से गुरु कण से है, जो उस क्षेत्र को जानने वाला सिद्धांत है।

यह एक गहरा सत्य प्रकट करता है: एक विचारशीलता अनिच्छुक गुण वाली अंडाणु में प्रवेश करती है। कहा जाता है कि अंडाणु में पूर्वनिर्धारित कोई विचार प्रक्रिया नहीं होती। वह ग्रहणशील होती है, निर्देशात्मक नहीं। शुक्राणु पुरुष की विचार छाप ले जाता है — कर्मात्मक योजना, भावनात्मक हस्ताक्षर, आध्यात्मिक अभिविन्यास। इसलिए कुंवारीपन अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है — नैतिक निर्णय नहीं, बल्कि क्षेत्र की शुद्धता की सुरक्षा के लिए। बिना पूर्व छाप के क्षेत्र, आने वाले गुरु कण को पूर्ण रूप से अपनी क्षमता प्रकट करने देता है, जो शारीरिक और ऊर्जात्मक दोनों रूपों में सामंजस्यपूर्ण सृजन को जन्म देता है।

यह नियंत्रण की बात नहीं है। यह सामंजस्य की बात है। यह सृजन की पवित्र संरचना का सम्मान करने की बात है। गुरु कण केवल जैविक तत्व नहीं है। यह चेतना का वाहक है। यह जीवन और मुक्ति दोनों का बीज है। जब यह नीचे की ओर प्रवाहित होता है, तो यह शरीर बनाता है। जब यह ऊपर की ओर जाता है, तो यह ज्ञान उत्पन्न करता है। और जब यह रूपांतरित होता है, तो यह कालातीत बन जाता है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य दबाव नहीं है। यह संस्कार है। यह ऊर्जा का सचेत उपयोग है, दोनों दिशाओं में। यह क्षेत्र का सम्मान है और जानने वाले की बुद्धि का सम्मान है। यह सृजन का नृत्य है, मुक्ति की मौनता है, और ब्रह्मांड की योजना है—एक बूंद में समाहित।

आइए, हम इस मार्ग पर श्रद्धा के साथ चलें। ऊर्जा से न डरें, बल्कि उसे मार्गदर्शित करें। शरीर को न अस्वीकारें, बल्कि उसे पवित्र करें। क्योंकि गुरु कण केवल शरीर में नहीं है।

यह श्वास में है। यह शब्द में है। यह इच्छा में है। और जब यह सही प्रवाह में होता है, तो यह केवल जीवन नहीं बनाता—यह मुक्ति बनाता है।

गति के भीतर महारत —

हमने "गुरु कण" की ब्रह्मांडीय संभावनाओं और इसके गुणों, अवस्थाओं, तथा तत्वों के साथ यात्रा को समझ लिया है। अब हमें उस व्यवहारिक पक्ष पर ध्यान देना होगा जो इस ऊर्जा के क्षरण और ब्रह्मचर्य के कमजोर पड़ने का कारण बनता है। **ब्रह्मचर्य** केवल ब्रह्मचर्यवान होना या ब्रह्मचर्य की संख्या में संयम नहीं है, बल्कि यह एक **जागरूक जीवनशैली** है जिसमें जीवन्त ऊर्जा का संरक्षण और उसके सही दिशा में प्रवाह शामिल है — जो स्पष्टता, शक्ति, उद्देश्य और आंतरिक प्रकाश की ओर ले जाता है।

एक सामान्य व्यक्ति भी, चाहे उसके पास कोई अलौकिक गुण न हों या वह संन्यास ना लिया हो, ब्रह्मचर्य की साधना कर सकता है अगर वह अपनी ऊर्जा के प्रवाह को समझे और पता लगाए कि वह कहाँ अनजाने में रिस रही है।

तीन ग्रंथियां — ऊर्जा के तीन गाँठें

शरीर की सूक्ष्म ऊर्जा संरचना में तीन मुख्य तनाव बिंदु होते हैं, जिन्हें योग में **ग्रंथियाँ** कहा जाता है। ये गाँठें ऊर्जा के संरक्षण और परिवर्तन के केंद्र हैं, या यदि समझ न पाए तो ऊर्जा के रिसाव के स्रोत। ये तीनों गाँठें सृजन, संरक्षण और परिवर्तन से जुड़ी हैं, और गुरु कण की शक्ति से गहराई से संबंधित हैं।

- **पहली गाँठ (स्थूल क्षेत्र)** — यह निचले शरीर में है और सृजन के क्षेत्र से जुड़ी है। यह प्रजनन केंद्रों को नियंत्रित करती है और यहाँ ऊर्जा शारीरिक स्त्राव के कारण सबसे अधिक क्षय होती है। गुरु कण का स्थूल रूप यहाँ प्रकट होता है। अनजाने में वीर्य का अधिक नुकसान शरीर की ही नहीं, मन की भी शक्ति को घटाता है। यह कोई नैतिक

समस्या नहीं, बल्कि ऊर्जा का मुद्दा है। यदि प्रणाली कमजोर हो तो संतान में भी कमजोर छाप बनती है।

- **दूसरी गाँठ (मध्य क्षेत्र)** — यह नाभि से गले तक फैली है, भावनात्मक अभिव्यक्ति, संरक्षण और संचार के क्षेत्र को नियंत्रित करती है। यहाँ ऊर्जा अक्सर अनियंत्रित वाणी के द्वारा निकल जाती है। अनावश्यक बातचीत, गपशप, चिल्लाना, तर्क-वितर्क — ये सब ऊर्जा को कमजोर करते हैं। गुरु कण शांति या सत्यवादी अभिव्यक्ति चाहता है। शब्द आग की तरह हैं; गलत उपयोग से वे आंतरिक समृद्धि के क्षेत्र को जला देते हैं।
- **तीसरी गाँठ (मस्तिष्क क्षेत्र)** — यह सबसे सूक्ष्म और कठिन है। यह विचार, कल्पना, स्मृति, और विश्लेषण को नियंत्रित करती है। गुरु कण यहाँ स्पष्टता, दृष्टि और आध्यात्मिक आकर्षण के रूप में प्रकट होता है। लगातार मानसिक उलझनों, चिंता, भविष्य की कल्पनाओं, और अधिक सोच-विचार के कारण यह ऊर्जा शिखर (क्राउन) से धीरे-धीरे रिस जाती है। एक थका हुआ मन अपनी चमक खो देता है।

गाँठें शत्रु नहीं, बल्कि मानव डिज़ाइन का हिस्सा हैं

इन तीनों गाँठों का अर्थ है कि शरीर, वाणी और मन के तीन स्तरों पर ऊर्जा का सही प्रबंधन आवश्यक है। ये गाँठें दबाव या दमन के लिए नहीं, बल्कि महारत हासिल करने के लिए हैं।

- निचली गाँठ **संयम** सिखाती है।
- मध्य गाँठ अभिव्यक्ति में **सच्चाई** मांगती है।
- ऊपरी गाँठ मन की **शांति** मांगती है।

जब इन तीनों पर महारत प्राप्त होती है, तभी ब्रह्मचर्य की सच्ची राह खुलती है।

प्राचीन ऋषि और ब्रह्मचर्य

ऋषि व्यावहारिक थे, उन्होंने अंधकारपूर्ण प्रतिबंध नहीं लगाए। वे जानते थे कि यदि गुरु कण का क्षरण होता है, तो स्वास्थ्य घटता है, स्पष्टता धुंधली होती है, और आध्यात्मिक साधना सतही रह जाती है। "यदि स्वास्थ्य चला गया तो सब कुछ चला गया," सिर्फ शरीर के लिए नहीं, ऊर्जा के सम्पूर्ण तंत्र के लिए थी।

गुरु कण का संरक्षण ही वास्तविक ब्रह्मचर्य की नींव है। शारीरिक स्त्राव को रोकना, अनावश्यक बोली को सीमित करना, और मन को शांत करना — ये सब मिलकर व्यक्ति को अपनी ऊर्जा को ऊपर की ओर प्रवाहित करने की क्षमता देते हैं, जो बुद्धि की अग्नि बन जाती है। यह दबाव नहीं, परिष्कार है; मौन नहीं, विवेकपूर्ण अभिव्यक्ति है; जीवन से अलगाव नहीं, जीवन के भीतर महारत है।

- **ब्रह्मा** सृजनात्मक — गुरु कण, जो रूप का मूल है।
- **ब्रह्म** वह अनंत अन्तरिक्ष है, जहाँ सभी रूप प्रकट होते, खेलते, विलीन होते और पुनः प्रकट होते हैं।
- सृजन तभी संभव है जब गुरु कण (ब्रह्मा) क्षेत्र (जिसे कोई गर्भ, कला, प्रोजेक्ट, राष्ट्र या मन हो सकता है) के साथ धार्मिक (सृष्टि क्रम) और उद्देश्यपूर्ण रूप से जुड़ता है।

ब्रह्मचर्य के अनकहे सूत्र

जब हम इस गहन अन्वेषण को पूर्णता की ओर ले जा रहे हैं, तब यह समझना आवश्यक है कि ब्रह्मचर्य केवल विचारों से नहीं टिकता। यह विशेष, सूक्ष्म और उद्देश्यपूर्ण अभ्यासों के माध्यम से जिया और सुरक्षित रखा जाता है—कुछ ऐसे पुराने अभ्यास, जो अब कहे नहीं जाते, बल्कि धीरे-धीरे लुप्त होती आदतों में पीढ़ियों से संजोए जाते हैं। फिर भी यही अभ्यास एक ब्रह्मचारी का रक्षक कवच बनाते हैं—यह सुनिश्चित करते

हुए कि "गुरु कण" की ऊर्जा सृजनात्मकता, स्पष्टता और सजग कर्म के लिए सुरक्षित रहे।

ये परंपराएं आज भले ही विस्मृति की ओर हों, पर वे मानव शरीर की सूक्ष्म यंत्रणा की गहरी समझ पर आधारित हैं। ये अब भी उन क्षेत्रों में जीवित हैं, जहाँ परंपरा की डोरी टूटी नहीं है। सच्चाई यह है कि ब्रह्मचर्य का मार्ग न तो पुरातन है, न ही कठिन। यह एक परिष्कृत, बुद्धिमत्तापूर्ण जीवन-पद्धति है—संरचना में वैज्ञानिक, उद्देश्य में पवित्र। इसे अपनाना मात्र संयम रखना नहीं, बल्कि सजगता, मर्यादा और आत्म-नियंत्रण के साथ जीना है।

हर धागा जो पहना जाता है, हर शब्द जो बोला जाता है, हर कदम जो बढ़ाया जाता है—जब वह सजगता से किया जाए, तो वह सृजन की अग्नि को संजोने का अभ्यास बन जाता है। इन प्राचीन सूत्रों को नियम नहीं, बल्कि ज्ञान की फुसफुसाहट की तरह याद रखा जाए—जो उन लोगों को मार्ग दिखाते हैं, जो गुरु कण की ज्योति को पूर्ण रूप से जीवित रखकर चलना चुनते हैं।

ब्रह्मचर्य, जैसा कि अब हम इसे समझते हैं, कोई निष्क्रिय संयम की अवस्था नहीं है—यह निरंतर क्रियाशीलता का एक चक्र है, जैसे पृथ्वी का निरंतर घूमना। स्वयं पृथ्वी एक ब्रह्मचारी है, जो सतत कर्म, धर्म और ब्रह्मांडीय व्यवस्था की लय में संलग्न है। हमारा निकटतम ग्रह मित्र—चंद्रमा—भी इस ब्रह्मांडीय ब्रह्मचर्य में भाग लेता है; उसके कलाएं ज्वार-भाटों, मनःस्थिति, फसलों और जीवों की आंतरिक रसायनशास्त्र को प्रभावित करती हैं।

हमारा संपूर्ण शारीरिक तंत्र निरंतर ब्रह्मचर्य में संलग्न है। हृदय प्रतिदिन हजारों बार रक्त को शुद्ध करता है, फेफड़े श्वास लेते हैं, पाचन अग्नि सक्रिय रहती है, कोशिकाएं विभाजित होती हैं। लेकिन ये सारी क्रियाएं एक लय, एक प्राकृतिक नियम के अनुसार होती हैं। वैसे ही हमारी चेतना को भी होना चाहिए। सक्रिय होना जीवन का लक्षण है,

लेकिन उस सक्रियता को उच्चतर प्रवाह से जोड़ देना—उत्तर की ओर, रूपक और ब्रह्मांडीय अर्थों में—ब्रह्मचारी बनना है।

यही कारण है कि भारतीय त्योहार केवल सांस्कृतिक आयोजन नहीं हैं। वे संकेत हैं, जो पृथ्वी की कक्षा के साथ समन्वित हैं ताकि हम दिव्य लय के साथ जुड़े रहें। विशेष रूप से जब सूर्य दक्षिणायन होता है, तब उत्सवों की एक महागाथा प्रारंभ होती है: गुरु पूर्णिमा, श्रावण, जन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी, महालय, नवरात्रि, दशहरा, दीपावली, गोवर्धन पूजा, देव दीपावली। ये तिथियाँ संयोगवश नहीं चुनी गई हैं; ये आत्मा की यात्रा की मील के पत्थर हैं, जो यम—ब्रह्मांडीय नियम—के अनुसार बृहस्पति गुरु तत्व को पुनः जागृत करने के लिए हैं।

चातुर्मास के समय वातावरण में एक सूक्ष्म संयोग अवस्था उत्पन्न होती है। जीवन हर ओर अंकुरित हो रहा है—कहीं बछड़ा जन्म ले रहा है, कहीं पौधा उग रहा है, कहीं कोई आत्मा गर्भ में प्रवेश कर रही है। यह है ब्रह्मचर्य की क्रियात्मक अभिव्यक्ति। यदि इसे केवल दिनचर्या के चश्मे से देखें, तो वह अधूरी समझ होगी। ब्रह्मचर्य कोई समय-सारिणी नहीं है। यह ब्रह्म—अंतरिक्ष की गर्भस्थली, सृष्टि के अंडाणु—में सहभागिता है।

श्रावण में हम शिव की उपासना करते हैं—संयोग के अधिपति—गर्भाधान के रहस्य को स्वीकारते हैं। **भाद्रपद** में गणेश की पूजा, जो मूलाधार के रक्षक हैं, आंतरिक रुकावटों को दूर करते हैं। **महालया** में हम अपने पूर्वजों का स्मरण करते हैं—अपने वंश की जड़ें। फिर आता है **आश्विन**, देवी का महीना, जिसमें हम नवरात्रि मनाते हैं—गर्भावस्था की एक पवित्र नकल। एक दीपक को एक मिट्टी के पात्र में रखा जाता है, जिसमें छेद होते हैं। उसके चारों ओर लयबद्ध गरबा खेला जाता है। यह उत्सव गर्भाधान, गर्भावस्था और जन्म की पवित्रता को दर्शाते हैं।

भारत एक कृषि-प्रधान संस्कृति है, और उसके त्योहार बोवाई और कटाई से गहराई से जुड़े हुए हैं। **चैत्र** और **आश्विन नवरात्रि** इसका प्रमाण हैं। रबी और खरीफ फसलें इन

लयों के अनुरूप हैं। ये अनुष्ठान पृथक् क्रियाएं नहीं हैं—वे समस्त जीवन को ब्रह्मचर्य की अवस्था में बनाए रखते हैं: मानव, फसलें, पशु, और स्वयं भूमि।

दशहरा उस शिशु के सफल जन्म का प्रतीक है, जो ब्रह्मांडीय गर्भाधान के नौ माह बाद होता है। **दीपावली** कन्या-शिशु का उत्सव है, गर्भ में स्थित आत्मा—अंधकार में दीपशिखा। **कार्तिक** में पहली फसल देवताओं को समर्पित की जाती है, विवाह होते हैं। **मार्गशीर्ष** में बच्चों को गुरुकुल भेजा जाता है—आत्मा के ज्ञान की ओर अग्रसर होने का प्रतीक। दत्तात्रेय की पूजा होती है—गुरु तत्व के रूप में, जो अत्रि ऋषि और अनुसूया के पुत्र हैं।

पौष में धनुर्विद्या, धनुर्विद्या और वीरता का प्रशिक्षण प्रारंभ होता है। **माघ** में शिवरात्रि, शिव और शक्ति का विवाह आता है। **फाल्गुन** में होली की मस्ती, खेल और रंग-बिरंगा अराजकता—संयोग की उलझनों की अभिव्यक्ति है। फिर आता है **चैत्र**—नववर्ष। राम का जन्म होता है। हनुमान जयंती आती है—पवित्रता के रक्षक का उत्सव। **वैशाख** में अक्षय तृतीया, पूर्वजों का आशीर्वाद नवजात के लिए। नरसिंह जयंती आती है—आंतरिक असुरों से रक्षा का प्रतीक।

ज्येष्ठ में हम बुद्धि और आध्यात्मिक परंपरा की जड़ों का उत्सव मनाते हैं। वट पूर्णिमा वह वृक्ष है जिसके नीचे दक्षिणामूर्ति ने सत्य प्रकट किया। गंगा दशहरा, गायत्री जयंती, और निर्जला एकादशी—ये गुरु तत्व को शुद्ध, पोषित और सुदृढ़ करते हैं। उपवास केवल शरीर को नहीं, बल्कि विचारों को भी शुद्ध करता है। यह स्पष्टता, स्थिरता और सहनशक्ति के लिए आवश्यक जीवन-रस बनाता है। शरीर शिवलिंग बनता है—आत्मा और साधन का मिलन। एकादशी का उपवास गहन साधना है—यह रुद्र को वह शक्ति देता है, जिससे वह आंतरिक प्रणाली की रक्षा कर सके।

आषाढ़ में जब देवता "सोने" चले जाते हैं—प्रकृति अंतर्मुखी हो जाती है—हम गुरु की शरण में जाते हैं, गुरु पूर्णिमा पर। अगले चार महीने एक पवित्र गर्भाधान चक्र होते हैं। बाहरी दुनिया शांत हो सकती है, लेकिन आत्मा सक्रिय होती है। यदि मार्गदर्शन न

मिले, तो यह अंतर्मुखी गति गलत दिशा में जा सकती है। नचिकेता, जो सदैव जिज्ञासु था, हमें धैर्य और सही प्रश्न पूछने की आवश्यकता सिखाता है।

ब्रह्मचर्य विरक्ति नहीं है। यह पवित्र क्रियाशीलता है, जो ब्रह्मांड से समन्वित है। त्योहार कोई विकर्षण नहीं हैं—वे दिव्य उपकरण हैं, जो गुरु तत्त्व को उन्नत, परिष्कृत और सक्रिय रखते हैं। प्रत्येक त्योहार आपको ग्रह के धर्म में भाग लेने के लिए आमंत्रित करता है—स्थान, समय और सृष्टि के साथ तालमेल में।

और इसलिए, अंतिम टिप्पणियों में हमें उस शारीरिक अनुशासन को नहीं भूलना चाहिए जो आध्यात्मिक साधना में सहायक होता है। निचले केंद्र की रक्षा के लिए कमर के नीचे एक करधनी बाँधी जाती है। कुछ लोग लंगोट पहनते हैं—ऊर्जा को स्थिर रखने हेतु। गले में पीला धागा या माला पहनी जाती है, ताकि अनियंत्रित वाणी से ऊर्जा बाहर न जाए। रुद्र ग्रंथि को बंद करने के लिए सिर पर शिखा रखी जाती है।

फर्श पर सोना—विशेषकर गोबर से लीपे फर्श पर—रोगों से बचाता है और प्राण को संतुलित करता है। ये शांत, अलिखित परंपराएं आज भी कुछ दूरस्थ क्षेत्रों में जीवित हैं—सरल, शक्तिशाली और गहना।

ये केवल अनुष्ठान नहीं हैं। ये आत्मा की प्रौद्योगिकियाँ हैं।

"एक साधारण सा उदाहरण दशहरा और दीपावली का। दशहरा उत्सव पुत्र-प्राप्ति का प्रतीक है और कन्या-प्राप्ति का प्रतीक दीपावली उत्सव है। दशहरा में अस्त्र-शस्त्र पूजन और सीमा-विस्तार की बातें, शूरवीरता की बातें एवं दीपावली में श्रृंगार की बातें। इन दोनों उत्सवों, त्योहारों की गरिमा को यदि कोई न भी समझे और केवल उत्सव मनाए तो भी फलश्रुति है। भारत में कन्या और बालक का जन्म एकतरफा नहीं है, बराबर है।"

ब्रह्मचर्य और उत्सवों की द्वैतता

यह सृष्टि के द्वैत (Duality) को बड़ी सुंदरता से सामने लाता है, जिसका वर्णन लेख में भी किया गया है।

- **दशहरा**—ब्रह्मांडीय गर्भाधान के बाद "शिशु के सफल जन्म का प्रतीक" है। यह पुरुषार्थ, पराक्रम, और विस्तार (अस्त्र-शस्त्र पूजन, सीमा विस्तार) का उत्सव है, जो एक संरक्षक (Protactor) की ऊर्जा को जागृत करता है।
- **दीपावली**—इसे आप कन्या-प्राप्ति का प्रतीक मानते हैं। यह सौंदर्य, समृद्धि, और श्रृंगार का उत्सव है। लेख इसे "गर्भ में स्थित आत्मा—अंधकार में दीपशिखा" कहता है, जो स्थिरता, पोषण और आंतरिक ज्योति की स्त्री-ऊर्जा (Feminine energy) को दर्शाता है।

निष्कर्ष दोनों की गरिमा को न समझते हुए भी यदि कोई उत्सव मनाता है, तो भी उसे फलश्रुति (spiritual benefit or positive outcome) प्राप्त होती है। यह दिखाता है कि ये त्योहार केवल बौद्धिक अनुष्ठान नहीं हैं, बल्कि ब्रह्मांडीय ऊर्जा चक्रों से जुड़ने के सहज माध्यम हैं।

कन्या और नर बालक को बराबर (equal) महत्व देना उस संतुलन (balance) की आवश्यकता को रेखांकित करता है जो ब्रह्मचर्य की सही क्रियाशीलता के लिए अनिवार्य है—शिव और शक्ति, ज्ञान और कर्म, स्थिरता और गति का संतुलन।

कहते हैं—

यह सृष्टि कोई एक क्षण की घटना नहीं है। यह एक मंथन है। और हर मंथन में दो ही वस्तुएँ निकलती हैं—**अमृत और विष**। यह द्वैतता केवल प्रतीक नहीं, यह हमारे जीवन की अनिवार्यता है। यह ब्रह्मांड में है, यह हमारे शरीर में है, यह हमारे कर्मों में है।

सुर और असुर—देव और दानवा **दक्षिणायन और उत्तरायण**। दिशाओं की पूर्वता, रजोगुणमयी गति—जैसे पेंडुलम की तरह, घड़ी की चाल। शरीर की रचना भी इसी प्रकार है: **सव्य और अपसव्य, वाम और दक्षिण**। यह अनिवार्यता है मंथन के लिए—अमृत की प्राप्ति और विष के शोधन हेतु। वैसे ही हमारी चेतना भी कभी अंतर्मुखी होती है, कभी बहिर्मुखी।

उत्तरायण का काल सव्य है— शुभता, देवत्व, ब्रह्म की ओर यात्रा।

दक्षिणायन का काल अपसव्य है— आत्मचिंतन, कर्म की परीक्षा, और कभी-कभी विष का उद्भव।

इस द्वैत को —जब सूर्य दक्षिणायन में हो, तब साधना करो, तब विष को अमृत में बदलो।

दोनों की आवश्यकता है; ये विरोधी नहीं हैं, ये पूरक हैं। जैसे दिन और रात, जैसे श्वास और निश्वास।

असुर भी मंथन करते हैं। उन्हें भी एक बूँद अमृत की मिलती है, चुरा के। परंतु शेष विष होता है। वे उस अमृत से आकर्षण पैदा करते हैं, पर विष से दबाते हैं। देवों को अमृत मिलता है मंथन से, पर उन्हें विष को पचाना है। शंकर ने विष को कंठ में रखा—न निगला, न उगला। नारियल को देखो—बाहर से कठोर, भीतर से मधुर। यही जीवन, यही संयम है।

दस इंद्रियों के रथी दशरथ के पुत्र राम ही देव प्रवृत्ति का मंथन हैं। कठिन था दशानन को भेदना, जो दस इंद्रियों से सुख लेता था। एक रामबाण उसके प्रकाश के स्रोत को सुखा देता है।

और इधर, दस इंद्रियों से सुख भोगने वाले दशानन का पुत्र इंद्रजीत—वाम प्रवृत्ति का मंथन। विष में एक कण अमृत की चुरा के। उसका उपयोग, कृष्ण यजुर्वेद में दक्षिणायन में कैसे किया जाए?

कृष्ण का देव मंथन—सोलह हजार। कृष्ण का बाण—सुदर्शन की तरह सोलह कलाओं वाला चंद्रमा।

तो हे नचिकेता, अब तुम बताओ—

तुम्हारा वाजश्रवस कौन है?

तुम उत्तरायण में हो या दक्षिणायन में?

तुम वाम हो या दक्षिण?

सव्य हो या अपसव्य?

तुम्हारा गुरु कौन?

मंथन तो होगा ही।

पर दिशा ----

मेरे गुरु ने गुरु ने बताया भेदन भेद गुरु ने बताया।

पहली भिक्षा अन्न की लाना।

गाँव नगरिया पास न जाना।

हिंदू तुर्की छोड़ के लाना।

लाना झोली भर के।

अखण्ड मण्डलाकार है, पथ प्रशस्त कर्ता डिम्भ नहीं है, सहाय है नचिकेता को मात्र गढ़ने में - निर्विचार। वज्रश्रवा का ही पुनर्जन्म है वज्रश्रवा के ही विचारों के अनुरूप।

अभिमन्यु यहाँ उलझता है।

तद्-पद्म दर्शितम् येन, तस्मै श्री गुरुवे नमः।

शक्ति तो मात्र सहाय है इसलिए कुवारिका से देहांत तक सभी रूपों में वंदनीय है।

हे! प्रथम देवता तुझे भी नमन है।

जननी और ब्रह्मचर्य का प्रवाह

इस वसुंधरा की उन जननी को नमन है, जो गर्भ में ही ब्रह्मचर्य के संस्कारों को प्रेषित करती हैं। मातृशक्ति ही इस वसुधा को जीवित रखती है।

श्री कृष्ण के प्रसंग में, नंद बाबा की नौ लाख गायों ने कृष्ण को सतत गतिशील रखा। लेकिन इस गति के पीछे नंदपत्नी यशोदा का प्रेम और वात्सल्य था, जिसने कृष्ण को एक गोपाल के रूप में गढ़ा। यशोदा ने उन्हें जन्म नहीं दिया, किंतु उनके जीवन में वह निरंतर सक्रियता भर दी जो ब्रह्मचर्य का सार है। ऐसी जननी यशोदा को नमन है, जिन्होंने एक बालक को गोपाल कृष्ण के रूप में गढ़ा। ऐसे यशोधानंदन कृष्ण को नमन है।

ब्रह्मचर्य की इस परिभाषा को महारानी कैकेयी के जीवन में भी देखा जा सकता है। उनके दो वरदानों ने राम के जीवन को निष्क्रियता (योग वशिष्ठ) से निकालकर वनवास की कठिन यात्रा में गतिशील कर दिया। इस यात्रा ने उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम का नाम और कीर्ति दिलाई। अपने पुत्र के लिए राज-पाठ मांगने वाली कैकेयी का यह कृत्य, भले ही कठोर लगा हो, किंतु इसने राम व भरत के जीवन को उस उच्चतर प्रवाह से जोड़ दिया। ऐसी ब्रह्मचारिणी कैकेयी को नमन है।

वहीं दूसरी ओर, माता सुमित्रा का त्याग भी ब्रह्मचर्य का ही एक उदाहरण है। उन्होंने अपने पुत्र लक्ष्मण को राम के साथ 14 वर्षों के वनवास के लिए भेजा, ताकि वे धर्म के मार्ग पर स्थिर रह सकें। माता के इस त्याग ने भरत को भी प्रेरित किया कि वे राम की

चरण पादुकाओं को सिंहासन पर रखकर राज्य चलाएं। ऐसी वीरंगना माता कौशल्या को, एवं माता सुमित्रा को भी नमन है।

ब्रह्मचर्य का यह प्रवाह सिर्फ मनुष्य तक ही सीमित नहीं है।

हे ब्रह्मचारी हनुमान की जननी, माता अंजनी, तुझे भी नमन है।

प्रकृति के चिह्न — शरीर में ऋतम की अभिव्यक्ति

मनुष्य के शरीर में, विशेष रूप से माता के गर्भ में, अंगुलियों के निशान (अंगुलि चिह्न) का निर्माण होता है। यह निर्माण पृथ्वी के घूर्णन और परिक्रमण की गति के कारण होता है। जैसे प्रत्येक वृक्ष या पौधे की पत्तियों में रेखाएँ होती हैं, वैसे ही यह प्रकृति का चिह्न सर्वत्र विद्यमान है। यह सहज रूप से दृष्टिगोचर होता है और हमें प्रकृति के नियमों की झलक प्रदान करता है।

वसुधैव कुटुम्बकम् की प्रथम झलक अब आप भी अनुभव कर सकते हैं। "वसु-देव" अर्थात् सत्य की साक्षात मूर्ति — ऐसा पुराणों में प्रमाणित है। ऋतम की साक्षात अनुभूति हमें अंगुलि चिह्नों के माध्यम से होती है।

यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे — जैसे शरीर में है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में। यह सूत्र दर्शाता है कि सूक्ष्म और स्थूल, व्यक्ति और विश्व, दोनों एक ही ऋतम के अधीन हैं।

एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण

यमराज को भैंस पर आरूढ़ दिखाया है।

भैंस विश्वामित्र की गाय है। राजा को जीवित स्वर्ग भेजने का उपक्रम एवं इंद्र द्वारा अपनी निजी सृष्टि बनाने का अनुरोध राजर्षि विश्वामित्र से किया गया। ऋषि, जो कुश के वंशज

हैं एवं गायत्री मंत्र के जनक हैं, से प्रार्थना पूर्वक इंद्र ने कहा—हे ऋषिवर, प्रथम गाय का निर्माण करें जिससे आपको सृष्टि निर्माण में सहयोग प्राप्त होगा।

इंद्र के कहने पर विश्वामित्र के प्रयास से यह काला जीव निर्मित हुआ जिसे आप अभी भैंस—भैंसा के रूप में विचरण करते हुए पाते हैं।

भावार्थ: कल्पना की निर्मिति ऐसी ही होती है। महिष कहा गया है ऐसी रचना को शास्त्र में और उससे निजात पाने के लिए देवी—महिषासुरमर्दिनी।

प्रकृति के यम एवं नियम के विपरीत जाने का अर्थ दर्शन की दिशा में अग्रसर होना है।

शास्त्र अकाट्य है— दर्शन नित नूतन उहापोह है।

जंझावत की निर्मिति है दर्शन।

स्वानुभूति

सावधानी की आवश्यकता तब होती है जब नदी का उल्लंघन किया जाता है।

प्राचीन भारत में तीर्थ यात्रा पर जाने से पहले व्यक्ति स्वयं का श्राद्ध करता था —

यह आत्मविसर्जन और आत्मसंयम का प्रतीक था।

अन्यथा, नदी पार करने से व्यक्ति विचलित हो जाता है।

और जहाँ यह विचलन स्थापित होता है,

वहीं उस व्यक्ति के आचरण और व्यवहार में उसकी छाया झलकने लगती है।

समुद्र या नदी पार करने की अनुमति केवल राजा या गुरु की आज्ञा से दी जाती थी।

अन्यथा, समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था।

यह केवल सामाजिक नियम नहीं था —

यह चेतना की रक्षा का उपाय था।

आचरण और भाव-भंगिमाएँ शरीर में बदल जाती हैं,

और शिव अवस्था में स्थित व्यक्ति के समक्ष ऐसे विचलित व्यक्ति से अपमान होता है।

इतना सूक्ष्म विवेचन —

क्या यह परम अहिंसा का प्रतीक नहीं है?

जीव ही शिव है।

जीवित ही कल्याणकारी है।

भारतीय जीवनशैली और विचारधारा,

जो स्वयं द्वारा जीवित और रचित जीवन-यापन पद्धति है —

उसकी झलक स्वर्ण-तुला दान से भी नहीं मिलती।

वास्तु का निर्माण

मकान बनाना = विचलित होना,

और स्वयं को ही पुनः मकान में स्थापित करना।

स्वयं का ही स्वर्ण, रजत और लौह बल —

स्वयं के शरीर से निष्कासित करना।

वास्तुशास्त्र एक चेतावनी है —

यह मयासुर का शास्त्र है,

जो आपको सचेत करने के लिए रचा गया है।

यह वही कथा है जो त्रिपुरनाशक शंकर के साथ जुड़ी है —

हर मकान बनाने वाले के साथ यह कथा घटित होती है।

वास्तुशास्त्र = मयासुर की चुनौती

एक आंतरिक युद्ध —

एक चेतना की परीक्षा।

तलातल लोक के अधिपति, दानव कुलभूषण मयासुर की संतानें पाँच — तीन पुत्रः दुंदुभि, मायावी, व्योमासुर। दो पुत्रीः मंदोदरी और बला।

दुंदुभि की कथा भागवत में वर्णित है।

मायावी का सटीक पात्र मेघनाद है, जो दशानन रावण का पुत्र था।

व्योमासुर — मीन में भी मेख निकालने के लिए कुख्यात।

मयासुर की पुत्रियों में मंदोदरी और बला शामिल हैं।

एक का पति दस इन्द्रियों से आनंद लेने वाला है, और दूसरी शूर्पणखा की श्रेणी में वर्गीकृत की जाती है।

शृंगकेतु और कुंभकेतु — मायासुर के दो भाई — सिर और पेट में सूक्ष्म कष्ट पहुँचाते हैं।

माता का नाम धानु और पिता कश्यप — जो मीठे और खारे पानी में भी गोता लगाते हैं।

पत्नी का नाम ओला देवी है, जिन्हें सुवर्ण अत्यंत प्रिय है।

और स्वयं मयासुर — अपने ही शरीर में उल्टा — तलातल (चौथा नरक) में स्थित है।

यह वंशवृत्त दक्षिणायन की छाया में विकसित नचिकेता के चिंतन से जुड़ा है — जहाँ इतिहास के पन्ने मौन होकर गूढ़ संकेत देते हैं।

देवता और साधक

जब हम मंत्रों और साधनाओं के माध्यम से किसी देव या देवी की उपासना करते हैं, तो हम उनके साथ एक विशिष्ट और शक्तिशाली संबंध स्थापित करते हैं। भारतीय ग्रंथ इस गहरे संबंध का वर्णन तीन मौलिक तत्वों के माध्यम से करते हैं: ऋषि (ज्ञानी, द्रष्टा और उपासक), छंद (विशेष लय, मंत्र या कर्मकांड), और देवता (जिस देव या देवी का आह्वान किया जा रहा है)। जब इस माध्यम से किसी देवता का आह्वान होता है, तो आंतरिक और बाहरी दोनों रूपों में परिवर्तनकारी प्रभाव प्रकट होते हैं। आंतरिक रूप से, यह प्रबुद्धता की ओर ले जाता है, और बाहरी रूप से, यह हमारे परिवेश में मूर्त परिणामों के रूप में सामने आता है। देवता के साथ यह प्रत्यक्ष जुड़ाव अक्सर विशिष्ट चिह्नों के माध्यम से देखा जा सकता है, जिसे निमित्त शास्त्र के रूप में जाना जाता है। यह गहन अंतःक्रिया ही हमें ललिता के उस अलौकिक "नृत्य" को समझने में मदद करती है, खासकर जब भक्ति के माध्यम से इन साधनाओं को बल मिलता है।

समागम का सिद्धांत

भारत में, प्रजातियों के अस्तित्व और निरंतरता के लिए 'समागम' की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका सुंदर प्रतीक हर गाँव में पाया जाने वाला शिवलिंग है, जो ब्रह्मांडीय समागम का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। चाहे हम थलचर (भूमि), जलचर (जल), या नभचर (वायु) जीवों की बात करें, समस्त जीवन इसी मौलिक समागम के सिद्धांत के माध्यम से प्रजनन करता है। इस प्रकार, जीवन के शाश्वत प्रवाह के लिए समागम निस्संदेह अपरिहार्य है।

परंपरागत रूप से, समागम के साथ उचित आचरण का एक विशिष्ट विधान जुड़ा होता है, जिसे सद्भाव और परस्पर लाभ सुनिश्चित करने के लिए सावधानीपूर्वक बनाया गया है। यदि इन कालातीत दिशानिर्देशों की उपेक्षा की जाती है, तो उसके नकारात्मक परिणाम अवश्यंभावी होते हैं। समागम प्रकृति के महान चक्रों में भी परिलक्षित होता है: सूर्य की किरणें जल को वाष्पित करती हैं, जो बादल बनकर जीवनदायिनी वर्षा के रूप में वापस आता है। इसी तरह, मानवीय क्रियाओं का भी बड़े वैश्विक समागम पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जैसा कि पृथ्वी के ओजोन परत पर हमारे प्रभाव से स्पष्ट है। यह एक नाजुक ढाल है जो जीवन को संभव बनाती है। आकाशीय पिंडों की दैनिक लय – उनका उदय और अस्त होना – एक और गहरा ब्रह्मांडीय समागम रचता है, जो पृथ्वी पर सभी जीवन की लय को आंतरिक रूप से आकार देता है।

भारतीय परंपरा में, मनुष्य अपने शरीर को एक प्रतीकात्मक आहुति के रूप में ब्रह्मांडीय अग्नि में अर्पित करता है। यह दर्शाता है कि समागम सहित प्रत्येक क्रिया के अंतर्निहित परिणाम होते हैं और यह एक बड़े कर्म चक्र में योगदान देता है। यहाँ तक कि जानवर भी, अपनी सहज प्रवृत्ति से निर्देशित होकर, प्रकृति के शुद्ध विधान के अनुरूप अपनी जैविक आवश्यकताओं (जैसे शिकार करना या भोजन करना) को पूरा करते हैं। हालांकि, मनुष्य सचेत रूप से समागम के परिणामों का सामना करते हैं और निरंतर संतुलन की तलाश में रहते हैं। भारतीय ग्रंथ संतुलित जीवन के लिए दिशानिर्देशों का एक समृद्ध ताना-बाना पेश करते हैं, जो केवल लिखित ग्रंथों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मंदिरों की वास्तुकला में भी उत्कृष्ट रूप से सन्निहित हैं। उदाहरण के लिए, शिव मंदिरों में अक्सर एक लिंगम के साथ एक जलहरी (पानी के प्रवाह के लिए एक चैनल) होता है। यह शिव की प्रबल ऊर्जा और जीवनधारा के पवित्र समागम का प्रतीक है, जो प्रजनन के निरंतर चक्र को दर्शाता है।

इसकी अपार शक्ति और गहरे निहितार्थों को देखते हुए, समागम को हमेशा अत्यंत सावधानी, श्रद्धा और सचेत जागरूकता के साथ किया जाना चाहिए। प्रजनन मुख्य रूप से पुरुष और स्त्री ऊर्जा के पवित्र समागम के माध्यम से होता है। भारतीय संस्कृति में,

विवाह की संस्था एक गहरे आध्यात्मिक समर्पण के साथ इस साझेदारी को औपचारिक रूप देती है। एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान, सप्तपदी (पवित्र अग्नि के चारों ओर सात फेरे), में युगल सप्तपदी के मंत्रों का पाठ करते हुए प्रतिज्ञाएँ लेते हैं। यह समारोह इस बात पर जोर देता है कि दृढ़ प्रतिबद्धता और गहरा आध्यात्मिक संबंध जीवन में समागम का मूल आधार हैं।

समागम में गायत्री

युगल के शारीरिक समागम के समय ऊर्जा स्वाभाविक रूप से कूल्हों से नीचे के क्षेत्र की ओर प्रवाहित होती है और विशेषतः Muladhar (ब्रह्मा ग्रंथि) में सूक्ष्म स्पंदनों को जागृत कर देती है। परंपरा के अनुसार, इस केंद्र बिंदु के ऊपर और नीचे सात-से-सात सूक्ष्म परतें स्थित हैं। ऊपरी परतें दैवी लोक की सूचक, जबकि निचली परतें शक्तिशाली होते हुए भी श्रद्धा एवं शुद्ध इरादे से ही स्पर्शनीय मानी गई हैं। अतः अंतरंग समागम को एकांत एवं अनुष्ठानिक परिवेश में संपन्न करने की सलाह दी जाती है, ताकि सृजन के लिए पवित्र और सकारात्मक वातावरण स्थापित हो सके। यहीं पर सप्त गायत्री मंत्रों का विशिष्ट महत्व प्रकट होता है।

गायत्री न केवल एक पवित्र मंत्र, बल्कि सृजन शक्ति की देवी के रूप में भी पूजनीय है। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि रचने हेतु गायत्री की आंतरिक ऊर्जा का उपयोग किया था। इस दृष्टि से गायत्री का जन्म-दायिनी रजोगुण—गतिशील, उत्साही और निरंतर सक्रिय ऊर्जा—से गहरा सम्बन्ध दिखाता है। जीवनदायिनी सूर्य किरणें इसी रजोगुण का प्रतीक हैं, जो फसलों, पौधों और वृक्षों को संवर्द्धन देती हैं। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित “गो” किरणें, जिन्हें गौ से संबद्ध किया गया, सृजन-जननी गायत्री का सार हैं—वही निरंतर जीवन-ऊर्जा जो ब्रह्माण्ड को स्थिर रखती है।

पृथ्वी पर गौवंश को इस दिव्य ऊर्जा की प्रचुरता प्राप्त होती है, इसलिए भारतीय संस्कृति में गाई पवित्र और पूजनीय मानी गई है। गोबर एवं गोमूत्र में विद्यमान “गो” -रश्मियाँ शुद्धिकरण की अद्भुत क्षमता रखें, जिनसे अनिष्ट जीवाणु नष्ट होते हैं। समागम के

अनुष्ठान में भी गायत्रीय ऊर्जा का अवलंब आवश्यक है, ताकि नवजात जीवन शुद्ध और जीवंत हो। इसलिए व्यक्ति को अपनी स्वयं की गायत्री—आंतरिक जीवन-शक्ति—को संरक्षित रखने का निर्देश दिया गया है। यदि कोई सृजनात्मक साधन छोड़ देता है, तो कहा जाता है कि उसका “आंतरिक सूर्य” अस्त हो गया, अर्थात् जीवन-ऊर्जा क्षीण हो गई।

गायत्री का प्रभाव केवल जैविक प्रजनन तक सीमित नहीं। व्यवसाय, विज्ञान, कला—किसी भी क्षेत्र में नवीन सृजन वही सार्वभौमिक जीवन-ऊर्जा है। जब आत्मा जीवंत रहती है, तब पाचन सुचारू होता है, पोषक तत्व रक्त, मांस और हड्डी के रूप में तैयार होते हैं; परंतु आत्मिक दुर्बलता पाचन-बाधा एवं जीवन-शक्ति में गिरावट का कारण बनती है।

प्रकृति की प्रचुरता में भी गायत्री की उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है। ताजे, पके फल गायत्रीय जनन क्रिया का परिणाम हैं, जबकि मुरझाना एवं सूखना शनि-प्रभाव—सक्रिय जीवन-चक्र के अंत—का सूचक है। उसी प्रकार, जब आत्मा संसार चक्र से पार होकर पितृलोक को प्रस्थान करती है, तो उसे भी शनि-लक्षणों से युक्त माना जाता है। पारम्परिक अन्त्येष्टि के बाद स्नान, शोधन एवं गायत्री मंत्र (अक्सर हजार बार) का जाप जीवन-ऊर्जा के पुनरुद्धार हेतु अनिवार्य विधि हैं। इस दौरान जीभ द्वारा तालु के सूक्ष्म बिंदुओं को स्पर्श कराना एक अंतर्गामी ऊर्जा-जनन प्रक्रिया है, जो “गो” सौर किरणों के समान निरंतर उर्जा प्रदान करती है।

इस प्रकार गायत्री हमारे भीतर एवं बाह्य संसार में सृजन और पुनरुत्थान की केंद्रीय शक्ति बनी रहती है, और अपने अक्षय स्वरूप में सावित्री के दीप्तिमान लोक में वास करती है।

गायत्री और सावित्री

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में, गायत्री और सावित्री को अविभाज्य बहन-तत्त्वों के रूप में देखा जाता है—एक ही दिव्य सृजनशक्ति के दो पूरक आयाम। सावित्री वह दीप्तिमान केसरिया आभा है, जो प्रातःकाल और संध्या के क्षणों में सूर्य की लाली से

प्रकट होती है। वह मूल प्रकाश का प्रतीक है—वह आधार जिसमें समस्त सृष्टि उद्भासित होती है। इसी दिव्य, शुद्ध और रूपांतरकारी ज्योति के आलोक में गायत्री अपना अद्भुत कार्य प्रारंभ करती है।

गायत्री की भूमिका है—मौजूदा ऊर्जा या पदार्थ को लेकर उसे नए रूप में ढालना। उदाहरण के लिए, जब हम भोजन ग्रहण करते हैं, तो वही गायत्री उस भोजन को पौष्टिक रस में बदलकर शरीर को पोषण और जीवन प्रदान करती है। ब्रह्मांडीय चक्र में भी यही होता है—रात्रि के अंधकार के बाद सावित्री की भोर उगती है, और इस प्रकाश से प्रेरणा लेकर गायत्री नए दिन का निर्माण करती है, जो जीवन और क्रिया-कलाप का नया चक्र आरंभ करता है।

समागम की प्रक्रिया में भी इन दोनों का सूक्ष्म संगम देखा जाता है। सूर्यास्त के पश्चात् सावित्री के आलोकमय आधार पर रात्रि की परिवर्तनकारी शक्तियाँ सक्रिय होती हैं। मानव प्रजनन के स्तर पर, युगल का ध्यान सहज ही अधोभाग की ओर केंद्रित होता है, जहाँ प्रबल ऊर्जाएँ स्थित रहती हैं। परंपरा मानती है कि यह मिलन तभी शुभ और पूर्ण होता है, जब उसमें पवित्र उद्देश्य और शुद्ध संकल्प निहित हो। यही वह क्षण है जब सप्तगायत्री का आह्वान होता है और वह सर्वोपरि हो जाती है।

शास्त्रों में वर्णित "सात अधःस्तर" (जिन्हें प्रतीकात्मक रूप से सात नरक भी कहा गया है) उन कच्ची, आकर्षक और प्रचंड ऊर्जाओं के लोक हैं, जिन्हें प्रजनन की शक्ति में साधना और संतुलन की आवश्यकता होती है। विवाह संस्कार इस रहस्य को सुंदरता से अभिव्यक्त करते हैं—जब दंपति सात फेरे लेकर पवित्र अग्नि की परिक्रमा करते हैं। प्रत्येक फेरा एक गहन प्रतिज्ञा का प्रतीक होता है। पारंपरिक रूप से दूल्हा पहले तीन फेरों में अग्रणी रहता है, जो उसकी संरक्षक और आरंभकारी भूमिका का द्योतक है। इसके पश्चात् दुल्हन अगले तीन फेरों में आगे बढ़ती है, जो उसकी पोषण और स्थिरता देने वाली शक्ति का प्रतीक है। सातवाँ और अंतिम फेरा पुनः दूल्हा आगे बढ़कर पूरा करता है—जो नए जीवन की सृष्टि में संतुलित, सामंजस्यपूर्ण सहभागिता का दिग्दर्शन

कराता है। यह अब्दुत 3-3-1 का लयबद्ध क्रम ब्रह्मांडीय चक्र को प्रतिबिंबित करता है, ठीक वैसे ही जैसे दिन-रात्रि और संध्या का शाश्वत प्रवाह निरंतर चलता रहता है। यही परस्पर आदान-प्रदान का नियम है—ऋषि, छंद और देवता का परिपूर्ण सामंजस्य।

छंद स्वयं—क्योंकि वही सृजन का माध्यम है—देवता स्वरूप माने जाते हैं। जल इसका सर्वोत्तम उदाहरण है, जो जीवन का मूल तत्त्व और परिवर्तन का सार्वभौमिक माध्यम है। जल के अणु न केवल भौतिक स्पर्श और गति से, बल्कि सूक्ष्म विचारों और वाणी से भी प्रभावित होते हैं। मानव शरीर लगभग 70% जल से निर्मित है—वही अनुपात जो पृथ्वी के जल और भूमि का है। यह गहरा साम्य दर्शाता है कि जल केवल भौतिक तत्त्व ही नहीं, बल्कि जीवन, ऊर्जा और चेतना का संवाहक माध्यम भी है।

भारतीय अनुष्ठानों में समागम का तथ्य

विवाह अनुष्ठानों की सूक्ष्मताएँ

भारतीय विवाह परंपराएँ, विशेष रूप से *सप्तपदी*—अर्थात् पवित्र अग्नि के चारों ओर सात फेरे—सिर्फ एक सामाजिक रस्म नहीं हैं, बल्कि ब्रह्मांडीय समागम और मूल ऊर्जाओं के सामंजस्यपूर्ण आदान-प्रदान का गहन प्रतीक हैं।

जब दूल्हा पहले तीन फेरों में अग्रसर होता है, तो यह केवल बाह्य क्रिया नहीं, बल्कि उसकी अंतर्निहित *गायत्री*—रचनात्मक पुरुष ऊर्जा—का दुल्हन को प्रतीकात्मक हस्तांतरण है। यह ऊर्जा Y-गुणसूत्र से जुड़ी मानी जाती है और त्रिगुणों (सत्व, रज, तम) के तीन आयामों में प्रकट होती है। यह प्रक्रिया स्त्री के त्रि-आयामी ऊर्जावान गर्भस्थान में प्रवेश करती है, जिसे इस ऊर्जा को ग्रहण और पोषण करने के लिए रचा गया है। यहाँ रजोगुण (गतिशीलता) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है: यदि यह सत्वगुण (शुद्धता और संतुलन) की दिशा में प्रवाहित हो, तो परिणाम कल्याणकारी होते हैं; किंतु यदि यह तमोगुण (जड़ता और अज्ञान) की ओर झुक जाए, तो विनाशकारी प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं।

पुरुष की इस गायत्री ऊर्जा को सही दिशा और संतुलन प्रदान करने के लिए स्त्री को मायके में संस्कार दिए जाते हैं। ये संस्कार उसके चित्त और चेतना को निर्मल बनाकर उसे सृजन के उच्चतर उद्देश्य के लिए तैयार करते हैं। यही क्रम गुरु-शिष्य परंपरा में भी देखा जाता है—जहाँ शिष्य अपने गुरु के आश्रम में रहकर पवित्र संस्कारों द्वारा आध्यात्मिक ग्रहणशीलता के लिए प्रशिक्षित होता है।

इसके बाद, अगले तीन फेरों में दुल्हन आगे बढ़ती है। उसका यह चरण ग्रहणशीलता, कोमलता और गहन स्वीकृति का प्रतीक है—वैसे ही जैसे चंद्रमा शांति से सूर्य के प्रकाश को प्रतिबिंबित करता है। फिर सातवें और अंतिम फेरे में दिशा पुनः दूल्हे के पास लौट आती है, जो यह दर्शाता है कि सृजन और जीवन के समग्र मार्गदर्शन में उसकी निर्णायक भूमिका है।

यह अद्भुत अनुष्ठान, भले ही मंत्रों से स्वतंत्र रूप में देखा जाए, पूरक ऊर्जाओं के सामंजस्यपूर्ण संगम को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। यह न केवल दो व्यक्तियों के मिलन का, बल्कि पुरुष और स्त्री ऊर्जा के ब्रह्मांडीय सामंजस्य का भी दिग्दर्शन कराता है।

भारतीय परंपरा में यह गहराई से माना जाता है कि खगोलीय गतियाँ पृथ्वी पर जीवन को सूक्ष्म स्तर पर प्रभावित करती हैं। इसी कारण विवाह जैसे अनुष्ठानों का समय निर्धारण प्रायः ग्रह-नक्षत्रों की अनुकूलता के आधार पर किया जाता है, जिससे ब्रह्मांडीय तालमेल और शुभ परिणाम सुनिश्चित हों। समागम का यह पवित्र कार्य जब सजगता, श्रद्धा और पवित्र उद्देश्य के साथ संपन्न होता है, तो इसे परम मंगलकारी माना जाता है—जो न केवल आनंद और संतोष, बल्कि आध्यात्मिक पूर्ति का भी स्रोत बनता है।

मृत्यु के बाद का मन और गायत्री की शक्ति

अब मृत्यु की घटना पर विचार करें। जब आत्मा शरीर का परित्याग करती है, तो *मन*—जो नौ इंद्रियों या "द्वारों" (आँखें, नासिका, मुख, कान, जननांग और गुदा) के माध्यम

से कार्य करता है—कभी-कभी विचलित होकर भटक सकता है। यदि मृत्यु के समय व्यक्ति अपूर्ण इच्छाओं या अधूरी सांसारिक लालसाओं से बंधा हो, तो उसका अस्थिर मन विशेष रूप से निकट संबंधियों या देखभाल करने वालों से सूक्ष्म रूप से "चिपक" सकता है। मृतक की यह अवशिष्ट मानसिक शक्ति, जिसे प्रेत कण कहा जाता है, जीवित व्यक्तियों की जीवन-ऊर्जा को धीरे-धीरे क्षीण कर सकती है और उन पर अचेतन प्रभाव डाल सकती है।

इसी कारण श्मशान या मृत्यु-संस्कार से लौटने पर गायत्री मंत्र का जप करने की परंपरा है। मंत्रोच्चार से उत्पन्न आंतरिक उष्मा और रजस् साधक को शुद्ध करती है, उसकी जीवनशक्ति का पुनः संचार करती है और उसे बाहरी, अवांछित प्रभावों से मुक्त रखती है।

महिला में गायत्री की शक्ति ग्रहणशीलता के रूप में प्रकट होती है, जो रजोनिवृत्ति तक उसकी प्रजनन क्षमता को बनाए रखती है। इसके विपरीत, पुरुष में यह शक्ति Y-गुणसूत्र से सक्रिय होती है। इस प्रकार, उत्पन्न और ग्रहण की गई शक्तियाँ मिलकर जीवन का संवाहन करती हैं—एक ऐसा सहजीवी नृत्य जो विवाह के सप्तपदी में सुंदर रूप से संकेतन होता है। यही संबंध गुरु-शिष्य परंपरा में भी झलकता है: गुरु की गायत्री (आध्यात्मिक ऊर्जा और ज्ञान) शिष्य द्वारा ग्रहण और आत्मसात की जाती है।

गायत्री का अहंकार से गहरा संबंध है, क्योंकि सृजन और प्रजनन का प्रत्येक प्रयास "मैं" की चेतना को प्रकट करता है। इसके विपरीत, सावित्री अहंकार-रहित है—वह केवल उस उपजाऊ भूमि का प्रतीक है, जहाँ सृजन संभव होता है। पवित्र समागम में पत्नी सावित्री के रूप में पति की रचनात्मक ऊर्जा को ग्रहण कर उसे रूपांतरित होने का अवसर देती है। इसी प्रकार शिष्य अपने गुरु के प्रति सावित्री का भाव अपनाता है—पूर्ण ग्रहणशीलता और अहंकार-शून्यता। इसी कारण उसे संन्यासी की प्रतिष्ठित उपाधि मिलती है।

संस्कृत का गहन सिद्धांत "यथा पिंडे तथा ब्रह्माण्डे"—"जैसा व्यक्ति में, वैसा ही ब्रह्मांड में"—यहाँ स्पष्ट होता है। जैसे सूर्योदय या सूर्यास्त का केसरिया आकाश स्त्री के मासिक धर्म के उपरांत गर्भाधान के लिए तैयार होने का प्रतीक है, वैसे ही गुरु-शिष्य परंपरा में भी गले के क्षेत्र में एक रूपकात्मक "मासिक धर्म" घटित होता है। इसे संत परंपरा ने शब्दों में व्यक्त किया है: "रस गगन गुफा में अझर झरे"—गले की गुफा में अमृत का निरंतर प्रवाह। यह शिष्य की गहन ग्रहणशीलता का संकेत है, जिसके बाद प्रवचन के माध्यम से आध्यात्मिक "प्रजनन" होता है।

यह प्रक्रिया सहज है, बाहरी प्रयास से रहित—ठीक वैसे ही जैसे शिशु गर्भ में बिना सचेत प्रयास के विकसित होता है। संत कवियों ने इसे यूँ कहा है: "बिन ताल जहाँ सहनाई बाजे"—जहाँ बिना वाद्यों के भी संगीत अनायास बज उठता है।

गायत्री और सावित्री के प्रतीकों में निहित यह गूढ़ अंतर्दृष्टि नामकरण के स्तर पर भी प्रकट होती है। गायत्री, यद्यपि स्त्रीलिंग है, सक्रिय पुरुष ऊर्जा (Y-गुणसूत्र) का द्योतक है। वहीं सावित्री, स्त्रीलिंग नाम होते हुए भी, ग्रहणशील, मौलिक मंच का प्रतीक है। यह विरोधाभास संस्कृत की गहन दार्शनिक दृष्टि को स्पष्ट करता है: क्रिया (क्रियाशीलता) सदैव स्त्रीलिंग है, जबकि आत्मा (शुद्ध चेतना) पुल्लिंग मानी जाती है। इस प्रकार, Y-गुणसूत्र—जिसे "गायत्री-2" कहा गया है—प्रजनन की गतिशील क्षमता का वहन करता है, जबकि आत्मा अपरिवर्तनीय साक्षी बनी रहती है।

गायत्री और सावित्री की इस गहरी समझ तथा मृत्यु के बाद भटकते मन की सूक्ष्म प्रकृति को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय विवाह अनुष्ठानों को इतनी सावधानी और ब्रह्मांडीय सिद्धांतों के साथ सरेखित करके क्यों रचा गया है। भारतीय दृष्टि में समागम केवल शारीरिक मिलन नहीं, बल्कि सृजन, संरक्षण और संहार के सार्वभौमिक चक्रों का प्रत्यक्ष प्रतिबिंब है—एक गहन पवित्र कर्म एवं ब्रह्मचर्य: अखण्ड मण्डलाकार को परिलक्षित करता है।

संन्यासी का पथ और आंतरिक समागम

अब जब इन गहन सिद्धांतों को समझ लिया गया है, तो आइए विचार करें कि एक संन्यासी—त्यागी साधक—समागम की अंतर्निहित प्रवृत्ति को कैसे साधता और रूपांतरित करता है। जन्म के क्षण से ही आत्मा की उपस्थिति शरीर में ऊर्जाओं का एक सतत प्रवाह प्रारंभ कर देती है, जो पाचन, श्वसन और रक्तसंचार जैसे सभी अनिवार्य कार्यों का सूक्ष्म संचालन करती है।

जब कोई व्यक्ति संन्यास की प्रतिज्ञा लेता है, तो गायत्री मंत्र, विशेषकर सप्त गायत्री, का जाप उसके जीवन का अंग बना रहता है। किंतु अब यह जाप केवल आशीर्वाद हेतु नहीं, बल्कि त्याग की प्रतिज्ञा को निरंतर स्मरण और पुष्ट करने का साधन बन जाता है। यह अनुशासन दमन नहीं, बल्कि जनन-ऊर्जा (रेतस्) के रूपांतरण का विज्ञान है। सामान्य अवस्था में यह ऊर्जा अधोगामी होकर प्रजनन की दिशा लेती है (अधो-रेतस्), किंतु संन्यासी इसे ऊर्ध्वगामी बनाता है (ऊर्ध्व-रेतस्), जिससे इसकी रचनात्मक शक्ति उच्चतर आध्यात्मिक रूप में परिणत होती है।

‘रेतस्’ शब्द में निहित ‘र’ अग्नि तत्व का प्रतीक है—उस उग्र, परिवर्तनकारी सृजनशक्ति का जो गायत्री के सार से जुड़ी है। संन्यासी का मार्ग इस शक्ति को सात प्रमुख चक्रों—ऊर्जा-केंद्रों—के माध्यम से ऊपर उठाने का है। प्रत्येक चक्र चेतना की एक परत है, और प्रत्येक यंत्र (सूक्ष्म उपकरण) हमारे आंतरिक जीवन-तंत्र को संचालित करता है। शास्त्रों में ऐसे लगभग सौ यंत्रों का वर्णन मिलता है, जिन्हें कभी कोमल कमल की पंखुड़ियों तो कभी मछली-आकृति त्रिकोणों के रूप में चित्रित किया गया है।

संन्यासी जब गायत्री का जाप करता है, तो वह इन चक्रों के माध्यम से प्रतीकात्मक रूप से आरोहण करता है। पहला पड़ाव है मूलाधार, जहाँ कुंडलिनी सुप्त अवस्था में निवास करती है। ब्रह्मा-ग्रंथि के भेदन पर यह शक्ति जाग्रत होती है। मूलाधार स्तर पर भोजन, भौतिक पोषण और भोग की इच्छाएँ प्रमुख होती हैं। किंतु जब साधक इन इच्छाओं

को साध लेता है, तो उसके भीतर देने और सेवा करने की तीव्र लालसा जाग उठती है—गुरु की सेवा, आश्रम की देखभाल, वृक्षारोपण, और असीम परोपकार में आनंद।

यह अवस्था नवविवाहित दंपति की आरंभिक उत्कंठा के समान है: पति अपनी पत्नी को उपहार और स्नेह लुटाने में प्रसन्न होता है, और पत्नी भी उसके पोषण और देखभाल में अनुरक्त रहती है। यह जुड़ाव और उदारता का प्रथम आवरण है।

दूसरे चक्र *स्वाधिष्ठान* पर साधक अधिकार की सूक्ष्म भावना अनुभव कर सकता है। सेवा और योगदान के बाद शिष्यत्व या अधिकार की आकांक्षा जन्म ले सकती है—“यह मेरा है, ऐसा ही होना चाहिए।” यह *विष्णु-ग्रंथि* का बंधन है। विवाह में भी यही परत देखी जाती है—जहाँ साथी एक-दूसरे के समय और स्नेह पर अधिकार जताने लगते हैं। यह स्वामित्व कभी-कभी संघर्ष और असंतुलन का कारण भी बनता है।

तीसरा चक्र है *मणिपुर*—सौर-जाल केंद्र। यहाँ उपलब्धि और गौरव की ऊर्जाएँ प्रबल होती हैं। संन्यासी, जिसने साधना से गहन ज्ञान अर्जित किया है, उसमें सूक्ष्म अहंकार या गर्व की भावना उठ सकती है। गृहस्थ के जीवन में यही केंद्र धन और वैभव के संचय से जुड़ा होता है—घर, धन, आभूषण, वाहन—जो रूपक रूप में रत्नों की तरह चमकते हैं। त्यागी के लिए मणिपुर का “*खजाना*” है ज्ञान का संचित प्रकाश, जो *रुद्र-ग्रंथि* से संबद्ध है; जबकि गृहस्थ के लिए यह सांसारिक संपत्ति है। दोनों पथ अलग होते हुए भी एक समान ऊर्जावान खाका साझा करते हैं, जो मानव यात्रा के समानांतर आयामों को उद्घाटित करता है।

बाह्य प्रतिबिंब

इससे पहले कि हम उच्च चक्रों की ओर आगे बढ़ें, आइए हम अपने स्वयं के शरीर-विज्ञान के भीतर समागम के एक सरल, फिर भी गहन उदाहरण पर विचार करें: हमारी श्वासा। हमारी श्वास स्वाभाविक रूप से दाहिने नथुने (पिंगला, जो सौर, मर्दाना ऊर्जा से जुड़ा है) और बाएं नथुने (इडा, जो चंद्र, स्त्री ऊर्जा से जुड़ा है) के बीच अपनी प्रमुखता को बदलती रहती है। कभी-कभी, कोई भी पक्ष प्रमुख नहीं होता है, और श्वास केंद्रीय

रीढ़ की हड्डी के चैनल (सुषुम्ना) के माध्यम से समान रूप से और सामंजस्यपूर्ण रूप से बहती है। संतुलन का यह क्षणिक, पवित्र क्षण **संधि** के रूप में जाना जाता है, आंतरिक समागम का एक महत्वपूर्ण बिंदु, जहाँ भीतर की मर्दाना और स्त्री ऊर्जाएँ मिलती हैं।

चक्रों पर आरोहण: कर्म से प्रतिबिंब तक

अब, आइए हम चौथे चक्र, **अनाहत** (हृदय केंद्र) पर चढ़ें। यह एक महत्वपूर्ण संक्रमणकालीन चरण का प्रतिनिधित्व करता है। पहले तीन चक्र मुख्य रूप से मर्दाना ऊर्जा से जुड़े थे, जो विवाह के शुरुआती तीन फेरों का नेतृत्व करने वाले दूल्हे के समान था, जो सक्रिय पहल और बाहरी प्रक्षेपण का प्रतीक है। जैसे-जैसे दुल्हन अगले तीन फेरों में शालीनता से आगे बढ़ती है, स्त्री ऊर्जा बढ़ती है, जो अनाहत में पाए जाने वाले गहरे संतुलन और एकीकरण के अनुरूप है। यहाँ, आध्यात्मिक ध्यान सक्रिय रूप से **कर्म** करने से शांत **चिंतन** की ओर, बाहरी क्रिया से आंतरिक ग्रहण और अवलोकन की ओर गहराई से स्थानांतरित होता है।

निचले चक्रों में किए गए मेहनती प्रयास यहाँ ध्यान देने योग्य परिणाम देने लगते हैं। जबकि **मणिपुर** (तीसरे चक्र) में, कोई सक्रिय रूप से ज्ञान संचित करता है, अनाहत में, कोई उस संचय के परिणामों का एक मौन साक्षी बन जाता है। इस स्तर पर एक **संन्यासी** (त्यागी) अब अपने शिष्यों को आध्यात्मिक रूप से परिपक्व होते हुए देख सकता है या अपनी आध्यात्मिक परियोजना को फलता-फूलता देख सकता है—यह उसके द्वारा सोचे-समझे बोए गए इरादों के बीजों की आनंदमय फसल है। वह बस देखता है, प्रक्रिया को न्यूनतम हस्तक्षेप के साथ प्रकट होने देता है, परिणामों के प्रति अनासक्ति के सिद्धांत को साकार करता है।

(भारतीय ग्रंथ गुरु की इस गहन मंत्र के साथ खूबसूरती से और श्रद्धापूर्वक प्रशंसा करते हैं: "गुरुर् ब्रह्मा, गुरुर् विष्णु, गुरुर् देवो महेश्वरा।" यह स्तुति, गुरु को ब्रह्मा (रचयिता), विष्णु (पालक), और महेश्वरा (परिवर्तक) के रूप में सम्मानित करती है, जो

नवरात्रि के जीवंत उत्सव को दर्शाती है। नवरात्रि के दौरान, देवी की नौ पवित्र दिनों तक पूजा की जाती है: पहले महाकाली के रूप में (जो सृजन में बाधाओं को दूर करती हैं, आदिम 'ए' ध्वनि से जुड़ी हैं), फिर महालक्ष्मी के रूप में (जो संतुलन का कार्य करती हैं, गुरुत्वाकर्षण बल की तरह—स्थिर और विस्तारक दोनों), और अंत में महासरस्वती के रूप में (जो सभी रसों या स्वादों/सारों का सार हैं, 'सारे रसो की वटी')। यह त्रिमूर्ति दर्शाती है कि कैसे गुरु, और वास्तव में विवाह अनुष्ठान में दुल्हन, ब्रह्मा की रचनात्मक शक्ति, विष्णु की स्थायी ऊर्जा, और महेश्वरा की परिवर्तनकारी स्पष्टता को साकार करते हैं। स्त्री पक्ष पर, काली महेश से मेल खाती है—अंधकार और भ्रम को दूर करने वाली। वह आंतरिक रूप से पुरुष की भेंट को आत्मसात करती है, परिष्कृत करती है, और उत्थान करती है। हालांकि, प्रतिबिंब की इस प्रक्रिया में, क्रम सूक्ष्म रूप से उलट जाता है। जबकि पुरुष सृजन, पोषण और विघटन (1-2-3) के क्रम में व्यक्त करता है, वह इसे विघटन, पोषण और सृजन (3-2-1) के रूप में वापस दर्शाती है। सामंजस्यपूर्ण समागम के लिए, पुरुष को इस शक्तिशाली उलटफेर को सचेत रूप से पहचानना चाहिए—इसे विरोध के रूप में नहीं, बल्कि स्त्री सिद्धांत के अंतर्निहित, प्राकृतिक संतुलन कार्य के रूप में। जहाँ इस गहन लय की जागरूकता और सराहना होती है, वहाँ समागम सहज अनुग्रह के साथ बहता है; जहाँ इस सूक्ष्म परस्पर क्रिया को चूक या गलत समझा जाता है, वहाँ वह विपरीत या प्रतिरोधी लग सकती है, हालाँकि सच तो यह है कि वह केवल उसके स्वयं के प्रवाह को एक उलटे, संतुलित तरीके से दर्शा रही है।)

विवाह में भी, शुरुआती प्रयास और निवेश साझा जीवन और अनुभवों में प्रकट होने लगते हैं। महत्वाकांक्षी भिक्षु के लिए, जिसका उद्देश्य ऊर्ध्व-रेतस् (जनन ऊर्जा को ऊपर उठाना) है, ध्यान आध्यात्मिक आरोहण के एकवचन पथ पर अडिग रहना चाहिए। शारीरिक समागम, यद्यपि पवित्र है, गायत्री (महत्वपूर्ण ऊर्जा) की मांग करता है और यदि अत्यधिक लिप्तता हो, तो आध्यात्मिक प्रगति में बाधा डाल सकता है। इसलिए, एक भिक्षु पारंपरिक योगिक प्रथाओं जैसे शंख प्रक्षालन (आंतों की सफाई), कुंजल क्रिया (योगिक उल्टी), नेति (नाक की सफाई), त्राटक (एकाग्रता के लिए

मोमबत्ती देखना), और **भ्रामरी प्राणायाम** (गुंजन श्वास) के माध्यम से शरीर को सावधानीपूर्वक शुद्ध करता है। यहाँ तक कि साधारण सहायक, जैसे उचित पेशाब के लिए विशिष्ट जड़ी-बूटियाँ, शरीर के ऊर्जावान चैनलों को स्पष्ट और आध्यात्मिक ऊर्जा के ऊपर की ओर प्रवाह के लिए अनुकूल रखने में मदद करती हैं।

इसी तरह, एक विवाहित युगल अक्सर अपनी ऊर्जाओं को सांसारिक आराम और स्थिरता बनाने के लिए समर्पित करता है। फिर भी, उनकी अंतःक्रियाओं, उनके विचारों, और उनके भावनात्मक आदान-प्रदान की गुणवत्ता भी उनकी चेतना पर सूक्ष्म, अमिट छाप छोड़ती है। सांसारिक अंतःक्रिया या यहाँ तक कि प्रेम-निर्माण की कलाओं में अत्यधिक कुशल कोई व्यक्ति एक आभा को प्रोजेक्ट कर सकता है जो संत के समान प्रतीत होता है—लेकिन यह अक्सर एक मात्र प्रतिबिंब हो सकता है, जो पानी में एक छवि के समान है जिसमें कोई सच्चा, अंतर्निहित पदार्थ नहीं होता है। इसके विपरीत, एक व्यक्ति जो भौतिक सफलता के लिए समर्पित है, फिर भी इसे शुद्ध इरादों और अखंडता के साथ pursues करता है, वह आध्यात्मिक रूप से उन्नत लग सकता है। इस तरह के प्रतिबिंब, यद्यपि बाहरी रूप से आकर्षक हैं, संभावित रूप से दूसरों को यह मानने के लिए गुमराह कर सकते हैं कि किसी के पास वास्तव में उससे अधिक गहरी आध्यात्मिक अनुभूति है, जिससे वास्तविक समझ की खोज में बाधा आती है।

जब एक संन्यासी अनाहत चक्र तक पहुँचता है, तो भौतिक दुनिया उसे सूक्ष्म रूप से लुभा सकती है—शायद विवाह या सांसारिक शक्ति के प्रस्तावों के साथ भी। हालांकि, वह सहज रूप से ऐसे प्रस्तावों को अपने पथ के लिए वास्तविक अवसरों के रूप में नहीं, बल्कि उसके द्वारा प्राप्त आंतरिक संतुलन और सद्भाव के मात्र प्रतिबिंबों के रूप में समझता है। यद्यपि शुरू में इंद्रियों को आकर्षक लगते हैं, ये अंतःक्रियाएं उसे सांसारिक उलझाव में खींचे बिना, पूरी तरह से आध्यात्मिक स्तर पर बनी रहती हैं।

आगे बढ़ते हुए, पांचवां चक्र, **विशुद्धि** (गला केंद्र), दूसरे चक्र (स्वाधिष्ठान) की ऊर्जाओं को खूबसूरती से दर्शाता है। ठीक उसी तरह जैसे एक पत्नी प्रजनन के कार्य में

अपने पति की गायत्री को गहराई से दर्शाती है, प्रत्येक उच्च चक्र अपने निचले समक्ष की ऊर्जाओं को प्रतिबिंबित और परिष्कृत करता है। एक अच्छी तरह से सींचे गए बीज की तरह जो परिश्रमपूर्वक लंबा होता है, त्रिकेंद्र (स्वाधिष्ठान) में बोए गए शुद्ध इरादे और रचनात्मक ऊर्जाएँ गला केंद्र (विशुद्धि) में enhanced रचनात्मकता, परिष्कृत संचार, और प्रामाणिक आत्म-अभिव्यक्ति के रूप में खिलती हैं। इस प्रकार विशुद्धि उन ऊर्जाओं का शानदार flowering दिखाता है जो शुरू में स्वाधिष्ठान में बोई और पोषित की गई थीं।

छठे चक्र, **आज्ञा** (तीसरी आँख) पर, हम अपने अस्तित्व की जड़ में फिर से जाते हैं। यदि मूल चक्र (मूलाधार) पर अनिर्धारित और अपूर्ण इच्छाओं का प्रभुत्व था, तो आज्ञा पर, ये इच्छाएँ **看似** उदात्त विचारों या बौद्धिक निर्माणों के रूप में स्थिर हो सकती हैं, जो सच्ची अंतर्दृष्टि को अस्पष्ट करती हैं। हालांकि, यदि कोई व्यक्ति बस उन इच्छाओं को जड़ पर देखता है—उन्हें बिना पकड़े, लगाव, या निर्णय के उठने और गुजरने देता है—तो आज्ञा का output परिष्कृत अंतर्दृष्टि, सहज ज्ञान, और स्पष्ट धारणा में बदल जाता है। इच्छाओं से बलपूर्वक लड़ने या उन्हें दबाने की कोई आवश्यकता नहीं है; बस उन्हें अनासक्त जागरूकता के साथ देखने से उनका प्रभाव और शक्ति गहराई से रूपांतरित हो जाती है। जड़ स्तर पर अंधाधुंध इच्छाओं पर कार्य करने से अनिवार्य रूप से आज्ञा पर उनका शुद्ध प्रतिबिंब विकृत हो जाता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति जो उत्पादक ऊर्जा में मजबूत है, वह अहंकार का शिकार हो सकता है, अपनी उपलब्धियों (अनुयायियों, संस्थानों, प्रसिद्धि) से अधिकार महसूस कर सकता है। अपने मन में उस अहंकार को बलपूर्वक दबाने या बौद्धिक रूप से लड़ने का प्रयास केवल आंतरिक संघर्ष का कारण बनता है और उसके ऊर्जा प्रवाह को असंतुलित करता है, इसे सुषुम्ना के सामंजस्यपूर्ण संतुलन को प्राप्त करने के बजाय मुख्य रूप से एक तरफ (बाएं या दाएं चैनल) से निर्देशित करता है।

समागम की अंतर्निहित सुंदरता, उसके सभी रूपों में, आपसी प्रतिबिंब के इस सिद्धांत में निहित है: किसी भी अंतःक्रिया में, चाहे वह किसी अन्य मानव, जानवर, या यहाँ तक कि एक पौधे के साथ हो, हम एक-दूसरे की ऊर्जा को सूक्ष्म रूप से दर्शाते हैं। एक अत्यधिक सहज व्यक्ति जानवरों की भावनात्मक अवस्थाओं (शांत या भयभीत) को भी महसूस कर सकता है और उनके ऊर्जावान प्रतिबिंबों को महसूस कर सकता है; वास्तव में attuned व्यक्ति पौधों से भी सूक्ष्म, गुंजयमान संकेत प्राप्त कर सकते हैं।

अंत में, जब साधक सातवें चक्र, **सहस्रार** (मुकुट) तक पहुँचता है, तो वह नेतृत्व करने, नियंत्रित करने, या यहाँ तक कि पारंपरिक अर्थों में किसी भी सक्रिय आध्यात्मिक प्रयास में संलग्न होने की आवश्यकता को पूरी तरह से त्याग देता है। संन्यासी, जिसने अपनी आध्यात्मिक यात्रा को बिल्कुल शुरुआत से देखा है, यह महसूस करता है कि अंतिम **मुक्ति** (मोक्ष) केवल **निर्वसनता** और **अनासक्ति** से ही प्राप्त होती है। अधिकांश वैवाहिक संबंधों में, एक पुरुष अंततः अपनी पत्नी द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों या बोझ के रूप में जो देखता है, उससे मुक्त होना चाहता है, अक्सर वह इस समागम को सह-रचना करने में अपनी खुद की मूलभूत भूमिका को भूल जाता है और उसकी परावर्तक प्रकृति में निहित अमूल्य शिक्षाओं की अनदेखी कर देता है।

विवाह की यह गहरी गतिशीलता जीवन की मूलभूत लय, **कर्म** - क्रिया और परिणाम के अंतर्संबंध को सूक्ष्मता से दर्शाती है। शुभ कर्म मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं, जबकि त्रुटिपूर्ण या अज्ञानी कर्म हमें अनुभव के चक्र को दोहराने के लिए तब तक बांधते हैं जब तक कि सबक पूरी तरह से सीख और आत्मसात नहीं हो जाते। जैसा कि एक पूजनीय संस्कृत श्लोक स्पष्ट रूप से कहता है: “अखंड मंडलं कर्म व्याप्तम्... तस्मै श्री गुरवे नमः” - “समस्त ब्रह्मांड कर्म से बंधा हुआ है। उस गुरु को प्रणाम, जो इस चक्र से बाहर निकलने का मार्ग दिखाता है।” इस भव्य ब्रह्मांडीय नृत्य में, सभी जोड़े आवश्यक और एक-दूसरे पर निर्भर हैं: **निर्माता और कर्ता, पुरुष और महिला, सूर्य और पृथ्वी**। जैसे जीवन के निर्माण के लिए एक और एक **Y** गुणसूत्र का एकजुट होना अनिवार्य है, उसी तरह **गायत्री और सावित्री** अस्तित्व के लिए शाश्वत रूप से

महत्वपूर्ण हैं। यहाँ तक कि एक भिक्षु भी, जो केवल वैराग्य और त्याग के “Y” को अपनाता हुआ प्रतीत होता है, अंततः सच्चे, पूर्ण बोध से पहले “” जीवन-प्रदायक ऊर्जा और अनुभवात्मक यात्रा के गहन महत्व को महसूस करता है।

दर्शन किन्तु सत्य संक्षिप्त में — गायत्री और सावित्री का प्रतिबिंब कैसे समझें?

रजस्वला स्त्री के समकक्ष नित्य की संध्या (प्रातः और संध्या), अयन परिवर्तन की संध्या, ऋतु परिवर्तन की संध्या — जैसे नवरात्र आदि। बालक से तरुण, तरुण से प्रौढ़, प्रौढ़ से वृद्ध — जीवन की अवस्थाओं की संधियाँ। इन संध्याओं में दी गई आपकी रजोगुण में गायत्री की आहुति आपके आगे के समय को निर्धारित करती है। पर इसका प्रतिबिंब दूसरे पर दिखाई देता है — आपकी गायत्री से प्राप्त गुण दूसरे में प्रकट होते हैं।

नवयुवक प्रश्न करते हैं: स्वामी जी, भारत में शिष्टाचार और प्रकृति के धर्मानुसार जीवन यापन करने पर विकास और धन आदि पश्चिम में दिखाई देता है। ईर्ष्या नहीं है, चिंता इस बात की है कि भारत में संघर्ष करने की शक्ति की प्रार्थना मंदिरों में प्रायः दर्शनों के लिए आने वालों की होती है।

उत्तर अत्यंत सरल है — इसी गायत्री-सावित्री की संरचना में। पिता की आहुति से पुत्र की प्राप्ति होती है। पुत्र पिता से भोग में प्रखर होता है, दस गुना आगे दिखाई देता है, पर वस्तुस्थिति में पुत्र मात्र नचिकेता है — पिता की एक बूंद। पिता तो ब्रजस्वसा है।

संध्या अवस्था में — दिनभर सूर्य की अपने रथ में यात्रा, संध्या की सावित्री में सूर्य की आहुति और दूसरी ओर दिन की उत्पत्ति। भारत में जल तत्व का वाष्पीकरण सूर्य की किरणों द्वारा होता है और पश्चिम में वर्षा। भारत की नदियाँ, पोखर, तालाब, झरने — यहाँ तक कि समुद्र के जलकण भी आध्यात्मिक विचारधारा से चार्ज हो जाते हैं। पश्चिम में जल तत्व का वाष्पीकरण, पश्चात संस्कृति के विचार, सूर्य किरणों से और वर्षा पूर्व में। इसलिए प्रतीति और प्रत्यक्ष में परिवर्तित हुए गुण दिखाई देते हैं।

यह ऐसा है जैसे किसी के महल को देखकर अपनी झोपड़ी में आग लगा देना।

अन्य समागम और प्रतिबिंब

भारत की अनुपम विरासत और समागम के सिद्धांत से जुड़ी गहरी समझ के बावजूद – ब्रह्मांडीय अंतःक्रियाओं को दर्शाने वाले प्राचीन ग्रंथों से लेकर सूर्योदय के साथ हमारी सांसों के रोजमर्रा के, अवचेतन समागम तक – हम अक्सर इसके अंतर्निहित महत्व और पवित्रता को पूरी तरह से समझ नहीं पाते हैं। यहाँ तक कि विवाह और गायत्री मंत्र के जाप जैसे गहन अनुष्ठान इतने सामान्य हो गए हैं, कभी-कभी तो दुकानों के लाउडस्पीकरों से निकलने वाले महज शोर तक सीमित हो गए हैं, कि उनकी आंतरिक पवित्रता और परिवर्तनकारी शक्ति को दुखद रूप से भुला दिया गया है। शायद, एक समाज के रूप में, हमें अपनी आध्यात्मिक संरचना के इन तत्वों के साथ बहुत अधिक श्रद्धा और सचेत जागरूकता के साथ व्यवहार करने की आवश्यकता है।

आंतरिक स्थान: गर्भ, ब्रह्म, और वास्तविकता के बीज

अस्तित्व में हर चीज, अपने मूल में, एक प्रतिबिंब है। बच्चे का माँ के गर्भ की शरण में बिताया गया प्रारंभिक समय, उसकी पूरी बाहरी दुनिया के लिए मूलभूत पैटर्न को सावधानीपूर्वक निर्धारित करता है। उस आंतरिक स्थान में अवशोषित पोषण संबंधी वातावरण और अनगिनत सूक्ष्म अनुभव, बाद के पूरे जीवन के लिए अमिट नींव बनाते हैं। यह गहरा सत्य कालातीत वेदांत सूत्र, "ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या" (ब्रह्म सत्य है; जगत माया है), और इस शिक्षा को प्रतिध्वनित करता है कि ब्रह्म असीम स्थान के समान है - वह आदिम शून्यता जो विरोधाभासी रूप से सब कुछ धारण करती है और समाहित करती है। एक व्यक्ति उस गर्भ के आंतरिक "स्थान" के भीतर जो कुछ भी मौलिक रूप से सीखता और अनुभव करता है, वही उसकी मूलभूत वास्तविकता बन जाता है; जीवन में सामना की जाने वाली हर दूसरी चीज, सार में, उस प्रारंभिक छाप का मात्र एक प्रतिबिंब या प्रक्षेपण है। इसलिए, जीवन की कठिन फिर भी सुंदर यात्रा, अस्तित्व के भव्य कैनवास में उसके प्रकट होने को देखते हुए, उस मूल "बीज" को सचेत रूप से

आगे ले जाने के बारे में है। अक्सर, एक संक्षिप्त संस्कृत सूत्र, गहन बौद्धिक अध्ययन के बाद पेश की गई एक पूरी तरह से तैयार की गई मिठाई की तरह, अर्थ की गहरी परतों को व्यक्त करता है। इसके मूल सार को गलत समझने से दुखद रूप से व्यक्ति भटक सकता है, फिर भी इसकी अंतर्निहित ऊर्जावान छाप जीवन की गति को सूक्ष्म रूप से आकार देना और मार्गदर्शन करना जारी रखती है। यह केवल एक अमूर्त दर्शन नहीं है; यह एक गहरा तर्क है जो हमारे रोजमर्रा के, जीए गए अनुभव में गहराई से निहित है।

इसी कारण से, संत और संन्यासी पारंपरिक रूप से सामान्य समाज से दूर रहना पसंद करते हैं। एक सच्चा योगी या संन्यासी एकांत कुटियाओं या शांत गुफाओं में शरण लेता है, ठीक इसलिए ताकि दूसरों के अव्यवस्थित विचारों और इच्छाओं के अनगिनत प्रतिबिंबों को अवशोषित करने से बचा जा सके, जिससे वे अपनी आंतरिक यात्रा पर निर्बाध रूप से ध्यान केंद्रित कर सकें। इसी तरह, कामुकता और अंतरंग समागम का कार्य पारंपरिक रूप से अत्यधिक निजी माना जाता था, जैसा कि सप्त गायत्री के अंतर्निहित सिद्धांतों द्वारा गहराई से सुझाया गया है। वास्तव में, यह गहराई से समझा जाता है कि आत्मा का अगला जीवन मृत्यु के क्षण में उसके अंतिम विचारों से गहराई से आकार लेता है: एक गहन रूप से धारण की गई अंतिम इच्छा तुरंत और निर्णायक रूप से तत्काल पुनर्जन्म के मार्ग को निर्देशित कर सकती है। चूंकि अंतिम आध्यात्मिक लक्ष्य जन्म और मृत्यु के पूरे चक्र को पार करना है, इसलिए सात गायत्रियों का सावधानीपूर्वक अभ्यास करना और चेतना की इन जटिल परतों की गहरी समझ विकसित करना बिल्कुल महत्वपूर्ण हो जाता है।

यदि कोई व्यक्ति अविवाहित रहने का विकल्प चुनता है, तो परंपरा अक्सर संन्यास (त्याग) के मार्ग में प्रवेश करने का सुझाव देती है। फिर भी, प्राचीन महाकाव्य महाभारत के भीष्म जैसे सम्मोहक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जो अपने जीवन भर दृढ़ता से ब्रह्मचारी रहे, फिर भी दुनिया के जटिल मामलों में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे, धर्म का पालन करते हुए। यहाँ तक कि भगवान कृष्ण ने भी दार्शनिक प्रवचन में इन विकल्पों के कुछ पहलुओं पर सवाल उठाया, यह दर्शाता है कि इन विविध आध्यात्मिक मार्गों पर पवित्र

शास्त्रों के भीतर खुले तौर पर चर्चा और बहस की गई थी, उनकी वैधता को स्वीकार करते हुए विवेक को प्रोत्साहित किया गया था। आज, हम इस प्राचीन गतिशीलता के आश्चर्यजनक प्रतिबिंब देखते हैं: एक सांसारिक व्यक्ति बाहरी तौर पर आध्यात्मिकता का ढोंग कर सकता है, जबकि एक सच्चा साधक, अपनी आंतरिक अनासक्ति के बावजूद, विरोधाभासी रूप से वास्तविक विवाह प्रस्ताव प्राप्त कर सकता है - यह सब एक गहरा दर्पणों का खेल है, जो आंतरिक अवस्थाओं को दर्शाता है। ब्रह्मचर्य (सचेत वीर्य प्रतिधारण और महत्वपूर्ण ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन) का अभ्यास गहरी जीवन शक्ति और आंतरिक शक्ति का निर्माण करता है, ठीक इसलिए क्योंकि गायत्री की परिवर्तनकारी भूमिका केवल शारीरिक प्रजनन से कहीं अधिक है।

झलकियाँ: ब्रह्मचारी और भौतिक संसार

समागम की उन्नत अवस्था, और व्यक्ति तथा ब्रह्मांड दोनों के लिए इसके निहितार्थ, उपनिषदों में सुंदरता से प्रकाशित हैं। एक ब्रह्मचारी की कालातीत कहानी पर विचार करें - एक कुंवारा शिष्य जिसने अपने श्रद्धेय गुरु से उचित दीक्षा (आध्यात्मिक दीक्षा) प्राप्त की थी। वह पवित्रता और आंतरिक सामंजस्य की एक विशिष्ट आभा विकिरण करता था, जो प्राकृतिक दुनिया और सार्वभौमिक रूप से, प्रकृति और हमारे अपने अस्तित्व के नाजुक तंत्र के भीतर होने वाले निरंतर, सूक्ष्म "समागम" या जटिल अंतःक्रिया के साथ गहरे सामंजस्य में रहता था।

एक ब्रह्मचारी जो सचेत रूप से अपनी उत्पादक ऊर्जा का संरक्षण और ऊर्ध्वगमन करता है, उसे ऊर्ध्व रेतस के रूप में पूजनीय माना जाता है - वह जिसकी रेतस (वीर्य या महत्वपूर्ण तरल) ऊपर की ओर बहती है, जो आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिए संरक्षित और उर्ध्वगामी होती है। इसके विपरीत, अधो रेतस इस महत्वपूर्ण ऊर्जा के प्राकृतिक, नीचे की ओर प्रवाह को संदर्भित करता है, जो जैविक प्रजनन के उद्देश्य से स्खलन में समाप्त होता है।

प्राचीन परंपरा के अनुसार, ऐसा एक ऊर्ध्व रेतस तपस्वी एक बार एक अछूते वन के भीतर गहराई में रहता था। लगभग एक दशक तक चले लंबे और गंभीर सूखे के दौरान, एक राज्य को बहुत कष्ट हुआ और उसने बेचैनी से राहत की तलाश की। विनम्रतापूर्वक यह सुझाव दिया गया कि यदि एक कुंवारे तपस्वी, एक जो प्रकृति के नियमों के अनुसार गहनता से रहता था और कठोर रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करता था, को राज्य का दौरा करने और कृपापूर्वक उसका आतिथ्य स्वीकार करने के लिए मनाया जा सके, तो सूखी भूमि वर्षा से धन्य हो सकती है।

ऐसी एक ऊंची आत्मा को मनाना कोई सरल कार्य नहीं था। ऊर्ध्व रेतस तपस्वी आंतरिक रूप से कृत्रिम या भौतिक आकर्षणों के प्रति आकर्षित नहीं होते हैं, बल्कि स्वयं प्रकृति की अदूषित, शुद्ध सुंदरता के प्रति आकर्षित होते हैं: वनों की गहरी शांति, नदियों की बहती हुई नीरवता, झरनों की पवित्रता, पक्षियों के गीतों की आनंदमय सिम्फनी, और तत्वों का लयबद्ध नृत्य। उनके अपने शारीरिक लय - खाना, पाचन, उत्सर्जन, गति, धारणा और विचार - प्राकृतिक दुनिया के अंतर्निहित सामंजस्य के अनुरूप और दर्पण होते हैं।

इस गहरे आध्यात्मिक दृष्टिकोण से, शारीरिक शरीर को मूल रूप से स्त्री के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जो एक ग्रहणशील पात्र के रूप में कार्य करता है, जबकि आत्मा को पुरुष माना जाता है, जो एक सजीव चेतना के रूप में कार्य करता है। अध्यात्म रामायण इस गतिशीलता को सुंदरता से दर्शाती है जब देवी सीता, रावण द्वारा बंदी बनाए जाने के दौरान भी, हनुमान से शक्तिशाली रूप से कहती हैं कि उन्होंने भी रावण के खिलाफ ब्रह्मांडीय युद्ध में एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उनका यह कथन इस बात पर जोर देता है कि प्रतीत होने वाली कैद की अवस्था में भी, स्त्री शक्ति सक्रिय, शक्तिशाली और महत्वपूर्ण रूप से लगी रहती है। यह इस मौलिक सिद्धांत की बात करता है कि सभी शारीरिक क्रियाएं, जिसमें प्रजनन का गहन कार्य भी शामिल है, स्वाभाविक रूप से देहधारी प्राणी के स्त्री सिद्धांत के भीतर होता है, जिसे तब दैवीय रूप से पुरुष आत्मा द्वारा निर्देशित और सजीव किया जाता है।

तो, सवाल यह उठा: ऐसे एक तपस्वी को, जो अपने वन में गहराई से जुड़ा हुआ था, उसे धीरे से जाने के लिए कैसे लुभाया जा सकता था? राज्य के समझदार सलाहकारों ने गणिकाओं - पारंपरिक रूप से साथ के परिष्कृत पेशा, या आधुनिक शब्दों में, गणिका-वृत्ति से जुड़ी महिलाओं के साथ परामर्श किया। हालाँकि, ये गणिकाएं केवल मनोरंजन करने वालों से कहीं अधिक थीं। प्राचीन समय में, वे अपने खुद के परिष्कृत नैतिक संहिताओं का सख्ती से पालन करती थीं और अक्सर गहन सम्मान, अनुशासन और कलात्मक उत्कृष्टता के सिद्धांतों पर रहती थीं। उनका इतना अधिक सम्मान किया जाता था कि उनका वेदों में भी गरिमा के साथ उल्लेख किया गया था और वे विवाह के समान पवित्र अनुबंधों में प्रवेश करने में सक्षम थीं।

इन अत्यंत समझदार महिलाओं ने एक चतुर योजना बनाई। जैसा कि उपनिषदों में बताया गया है, गणिकाओं ने तपस्वी के अभ्यस्त मार्ग पर पेड़ों की शाखाओं से कलात्मक रूप से स्वादिष्ट मिठाइयाँ - जैसे कि लड्डू, पेड़े और जलेबी - लटका दीं, उन्हें रणनीतिक रूप से उन क्षेत्रों में रखा जहाँ वह आमतौर पर फूल इकट्ठा करता था, अपने जानवरों को खिलाता था, या पानी लाता था। जब तपस्वी, अपने आस-पास के माहौल को गहन जागरूकता के साथ देखते हुए, इस उत्सुक और असामान्य प्रदर्शन का सामना करते थे, तो वह इसकी नवीनता से जिज्ञासु हो गए।

इसके कुछ ही समय बाद, गणिकाएं स्वयं प्रकट हुईं, जो सुगंधित फूलों, बहते हुए वस्त्रों और आकर्षक आकर्षण की आभा के साथ सुशोभित थीं। वे सच्ची पेशेवर थीं, जिन्हें राजा की ओर से भेजा गया था, लेकिन अपने कार्य की अद्वितीय समझ से गहराई से प्रेरित थीं। तपस्वी उत्सुक था, इच्छा से मोहित या प्रभावित नहीं था। उसने शांत भाव से उनसे पूछा, “आप कौन हैं?” उन्होंने गहन सरलता और सत्य के साथ उत्तर दिया, “आप पुरुष के रूप में जाने जाते हैं; हम महिला हैं।”

हालाँकि, उसकी गहरी जिज्ञासा रहस्यमयी मिठाइयों पर केंद्रित थी। “क्या आप जानती हैं कि ये कहाँ से आईं?” उसने पूछा। “हाँ,” उन्होंने एक जानकार मुस्कान के साथ उत्तर

दिया। “वे एक ऐसे राज्य में उगती हैं जहाँ प्रकृति उन तरीकों से फलती-फूलती है जिनकी आपने कभी कल्पना नहीं की है, जहाँ बहुतायत प्रयास रहित है। क्या आप यात्रा करना चाहेंगे?”

वह रुका, फिर जवाब दिया, “मैं अपने गुरु से पूछूंगा।”

“अपना समय लीजिए,” उन्होंने शांत धैर्य के साथ जवाब दिया। “शायद हम फिर मिलेंगे, या शायद नहीं।”

इस तरह विचार का सूक्ष्म बीज कुशलतापूर्वक बोया गया। तपस्वी, अब अकेले, इस अनोखी मुठभेड़ पर मनन करने लगा। जब मन, विशेष रूप से एक ऊर्ध्व रेतस का, कल्पना में भटकता है, खासकर उन घटनाओं की ओर जो प्रकृति में सीधे अनुभव नहीं की जाती हैं, तो विचार प्रक्रिया अक्सर नाभि के नीचे से उत्पन्न होने लगती है। यह एक उल्लेखनीय शारीरिक और ऊर्जावान सत्य है कि नाभि के नीचे का शरीर लगभग उतना ही लंबा होता है जितना उसके ऊपर का हिस्सा होता है। आत्मा, नाभि के पवित्र स्थान में रहती है, अब नीचे से सूक्ष्म रूप से प्रभावित होती है - ये अधो रेतस की पहली हलचल हैं, नीचे की ओर झुकावा।

बाद में उसने अपने पूरे अनुभव को अपने गुरु के साथ साझा किया, जो आध्यात्मिक और लौकिक दोनों क्षेत्रों के कार्यों की गहरी समझ रखते थे, और वे राजा के दरबार की सूक्ष्म युक्तियों को समझ गए। यह लुभावनी कहानी, उपनिषदों की अन्य कई कहानियों की तरह, केवल एक घटना को व्यक्त नहीं करती है, बल्कि गहरी, स्तरित आध्यात्मिक समझ प्रदान करती है। यह ऐसी गहन कहानियों से है कि हम उन जटिल आंतरिक ऊर्जाओं के बारे में अमूल्य समझ प्राप्त करते हैं जो न केवल व्यक्ति की आध्यात्मिक यात्रा को, बल्कि ब्रह्मांड के बहुत ही ढांचे को भी आकार देती हैं।

समागम और ऊर्जा का प्रवाह

पवित्र समागम की परिवर्तनकारी प्रकृति को इन गहन उपनिषद परंपराओं के जारी रहने से और अधिक स्पष्ट और खोजा गया है। आइए हम ब्रह्मचारी के उदाहरण चरित्र पर वापस चलें - एक कुंवारा शिष्य, जिसे एक सच्चे गुरु द्वारा सावधानीपूर्वक दीक्षित और दिव्य रूप से निर्देशित किया गया था, जिसकी आंतरिक पवित्रता और अनुशासित अभ्यास के कारण उसकी आभा चमत्कारी ढंग से चमकती है। यह ब्रह्मचारी अस्तित्व की प्राकृतिक लय के साथ गहन सामंजस्य में रहता है, जहाँ सूक्ष्म समागम या "संगम" बाहरी और आंतरिक दोनों तरह की हर अंतःक्रिया को गतिशील रूप से नियंत्रित करता है।

पूरक शक्तियों का यह निरंतर, जटिल अंतर्संबंध स्वयं जीवन का सार है। जिस तरह प्रकृति खिलते फूलों की अलौकिक सुगंध, एक सुखदायक हवा के कोमल स्पर्श, या पानी पर नाचते सूर्य के प्रकाश की मंत्रमुग्ध करने वाली चमक के साथ हमारे इंद्रियों को सूक्ष्म रूप से लुभाती है, उसी तरह हमारे आंतरिक तंत्र भी आत्मा (जिसे पुरुष चेतना माना जाता है) और जटिल शारीरिक यंत्रों या यन्त्रों (जिसे स्त्री, ग्रहणशील संरचना माना जाता है) की निरंतर, शुद्ध अंतःक्रिया के माध्यम से कार्य करते हैं। जीवन का मूल रूप से सब कुछ समागम है - देने और लेने का पवित्र संतुलन, आवश्यक चेतना का अपने भौतिक पात्र से मिलना।

प्रजनन के कार्य में पुरुष अंग, जीवन का बीज ग्रहणशील स्त्री रूप में प्रवेश कराता है। जब कोई सचेत रूप से ब्रह्मचर्य का मार्ग चुनता है, तो इस शक्तिशाली उत्पादक ऊर्जा को सावधानीपूर्वक संरक्षित और ऊर्ध्वगामी किया जाता है। ऊर्ध्व रेतस इस महत्वपूर्ण शक्ति को ऊपर की ओर निर्देशित करता है, जो आध्यात्मिक यात्रा को पोषण और गति देता है। इसके विपरीत, अधो रेतस इस ऊर्जा के प्राकृतिक, नीचे की ओर प्रवाह का प्रतिनिधित्व करता है, जो जैविक प्रजनन के कार्य में समाप्त होता है।

जुड़े हुए आध्यात्मिकता का एक आश्चर्यजनक ऐतिहासिक उदाहरण भारतीय परंपरा से आता है: ऋषि वशिष्ठ की कहानी, जिन्होंने तपस्या में गहरे लीन होने के बावजूद, राजा दशरथ के कुलगुरु (कुटुम्भ के कुलगुरु) की महत्वपूर्ण भूमिका को कृपापूर्वक स्वीकार किया। कठोर आध्यात्मिक अभ्यासों में लगे होने के बावजूद, वशिष्ठ ने राज्य के अधिक भले के लिए सांसारिक कर्तव्यों में भाग लेने के लिए सहमति दी। उन्होंने सावधानीपूर्वक पवित्र अनुष्ठान किए, गहन परामर्श दिया, और सामाजिक धर्म में सक्रिय रूप से योगदान दिया, स्पष्ट रूप से यह दर्शाया कि एक सच्ची साकार आत्मा अपने क्षणिक भ्रमों में कभी फंसे बिना ही भौतिक दुनिया के साथ अंतःक्रिया कर सकती है।

इसके समांतर, कुंवारे तपस्वी ने, अपने सर्वज्ञानी गुरु के निर्देशन में, कृपापूर्वक राजा से मिलने के लिए सहमति दी। गुरु ने उसे संक्षेप में सलाह दी: राज्य के सच्चे अनुरोध को पूरा करो, सभी घटनाओं को अनासक्त जागरूकता के साथ देखो, और फिर सुरक्षित लौट आओ। और इस तरह, ब्रह्मचारी राजा के परिष्कृत क्षेत्र में प्रवेश कर गया। गणिकाओं की मनमोहक उपस्थिति, शाही दरबार का सूक्ष्म आकर्षण, और प्राकृतिक शारीरिक संवेदनाओं का कोमल जागरूकता अंततः एक पल की रिहाई का कारण बनीं - रेतस का एक स्राव। जैसे ही यह सहज घटना घटी, आसमान में चमत्कारी ढंग से बादल इकट्ठा हो गए, और जीवन देने वाली वर्षा की झड़ी लग गई, जिससे सूखी भूमि धन्य हो गई। यह गहन कथा संरक्षित उत्पादक ऊर्जा और प्रकृति की महत्वपूर्ण लय के बीच गहरे, रहस्यमय अंतर्संबंध को शक्तिशाली रूप से चित्रित करती है, खासकर जब इसे विशिष्ट दिव्य इच्छा या ब्रह्मांडीय संरेखण द्वारा सक्रिय किया जाता है। शास्त्र यह भी बताते हैं कि आदर्श प्रजनन, अपने शुद्धतम रूप में, जीवन में एक बार का कार्य होना चाहिए, जो इसके उद्देश्य की असीम शक्ति और पवित्रता को दर्शाता है। जबकि कई ऋषियों ने विवाह किया और सामाजिक ढांचे के भीतर रहे, उनकी शिक्षाओं ने लगातार पवित्र संयम, आध्यात्मिक इरादे, और समागम के सभी कृत्यों में गहन जिम्मेदारी पर जोर दिया। उनकी प्राचीन कहानियों में अक्सर मानवीय त्रुटि की ईमानदार स्वीकारोक्ति और संतुलन को सावधानीपूर्वक बहाल करने के लिए उनके द्वारा की गई

कठोर तपस्या शामिल होती है, जो सभी आकांक्षियों के लिए एक रोडमैप प्रदान करती है।

कामुक विचार, यह समझा जाता है, नाभि के नीचे के क्षेत्र में उठने लगते हैं, एक आंतरिक गर्मी पैदा करते हैं जिसे या तो भस्म किया जा सकता है या निर्देशित किया जा सकता है। संन्यास का मार्ग, या त्याग, मूल रूप से इस आंतरिक समागम की गहन जागरूकता और परिवर्तन को शामिल करता है। शारीरिक समागम के बिना भी, ब्रह्मांडीय अंतर्संबंध की यह पवित्र आंतरिक लय बनी रहती है। हालाँकि, जागरूकता या उच्चतर उद्देश्य के बिना किया गया बार-बार और लापरवाह समागम, इस कीमती ऊर्जा को खत्म कर देता है, जो शरीर की आंतरिक 'बिजली' या महत्वपूर्ण शक्ति को प्रभावी रूप से समाप्त कर देता है।

जब समागम सावधानीपूर्वक धर्म (धार्मिक आचरण और ब्रह्मांडीय कानून) के सिद्धांतों का पालन करता है, तो पुरुष स्त्री के प्रति गहरी, अटूट कृतज्ञता का अनुभव करता है, जो सृष्टि को सक्षम करने वाला दिव्य पात्र है। इसलिए, महिलाओं के प्रति दिखाया जाने वाला गहन सांस्कृतिक सम्मान - स्त्री सिद्धांत की पवित्र, उत्पादक भूमिका का एक चमकदार प्रतिबिंब, जो स्वयं शारीरिक शरीर में निहित है।

एक संन्यासी (त्यागी) की आवश्यक भूमिका सूचित करना है - गहन सच्चाइयों को प्रकाशित करना - उन्हें लागू करना नहीं। चूंकि हमारे आधुनिक युग में पारंपरिक गुरुकुल और प्रामाणिक आध्यात्मिक वंश तेजी से दुर्लभ हो रहे हैं, इसलिए भविष्य की पीढ़ियों के लाभ के लिए इन कालातीत सच्चाइयों को सावधानीपूर्वक रिकॉर्ड करना और साझा करना बिल्कुल महत्वपूर्ण हो जाता है। अंतिम लक्ष्य नैतिक पुलिसिंग या निर्णय नहीं, बल्कि सच्चा, करुणापूर्ण मार्गदर्शन है। एक ऐसी दुनिया में जो मुख्य रूप से भौतिक आजीविका और बाहरी उपलब्धि पर केंद्रित है, गहन आध्यात्मिक ज्ञान आवश्यक आधार, दृष्टिकोण, और एक अटूट नैतिक दिशानिर्देश प्रदान करता है।

समागम, अपने असंख्य रूपों में, सदैव उपस्थित और अपरिहार्य है। यहां तक कि खुले शारीरिक संपर्क या स्खलन के बिना भी, निरंतर आंतरिक समागम प्रकट होते हैं - आत्मा और उसके यंत्रों (सूक्ष्म तंत्रों) के बीच, विचारों और भावनाओं के बीच, आंतरिक ऊर्जाओं और तत्वीय शक्तियों के बीच जो हमारे अस्तित्व का निर्माण करती हैं। ये निहित समागम प्राकृतिक और गहन रूप से पवित्र हैं। फिर भी, इस मौलिक सिद्धांत को गलत समझना या अनजाने में विकृत करना अनपेक्षित नुकसान और असंतुलन का कारण बन सकता है।

ध्वनि भी, इस जटिल ब्रह्मांडीय नृत्य में एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। घंटियों की गुंजायमान आवाज, ढोल की लयबद्ध धड़कन, और मंत्रों का जाप - ये सभी शक्तिशाली कंपन पैदा करते हैं जो रक्षा करते हैं, शुद्ध करते हैं, और आध्यात्मिक रूप से ऊंचा उठाते हैं, समागम और परिवर्तन के लिए एक शुभ ऊर्जावान वातावरण बनाते हैं।

निष्कर्ष: भारत में समागम का शाश्वत प्रवाह

भारत में, अस्तित्व का ताना-बाना आध्यात्मिकता के गहन धागों से बुना गया है। यहाँ, प्राकृतिक समागम के माध्यम से प्रकट होने वाली कोई भी चीज, जो जीवन या महत्वपूर्ण ऊर्जा पैदा करती है, स्वाभाविक रूप से दिव्य के रूप में पूजनीय है। प्राचीन काल से लेकर आज तक भारतीय ऋषियों की समृद्ध परंपरा और उनका अटूट प्रभाव लगातार प्राकृतिक, ब्रह्मांडीय व्यवस्था के लिए गहन पसंद को रेखांकित करता है। भगवती, अपनी प्राकृतिक समागम की पवित्र अवस्था में, इस व्यवस्था के साथ पूर्ण सामंजस्य में निरंतर ऊर्जा पैदा करती हैं और प्रदान करती हैं - एक ऐसी प्रक्रिया जो न केवल जीवन को बनाए रखने वाली है बल्कि स्वाभाविक और गहन रूप से शुद्ध मानी जाती है। दिव्य समागम की यह कालातीत समझ भारतीय चेतना की आधारशिला बनी हुई है।

अब हम भारतीय देवताओं की "सावित्री अवस्था" का अवलोकन करेंगे, जैसा कि प्राचीन ग्रंथों में वर्णित है।

भगवान शंकर सदैव सावित्री अवस्था में स्थित रहते हैं। जब कोई भी व्यक्ति — चाहे वह मनुष्य हो, देवता हो या राक्षस — उनके समक्ष किसी कामना के साथ आता है, तो उसकी इच्छा पूर्ण होती है। इसी कारण उन्हें "आशुतोष" कहा जाता है — अर्थात् जो सहजता से प्रसन्न हो जाते हैं और शीघ्र फल प्रदान करते हैं।

अब "गायत्री" की अवधारणा स्पष्ट होती है — जल के अणु में उत्पन्न होने वाली इच्छा ही गायत्री के रूप में कार्य करती है। और उस इच्छा को साकार करने के लिए, नचिकेता रूपी बीज को विकसित करने हेतु एक उपयुक्त "क्षेत्र" (Space) की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार, ब्रह्मचर्य का मूल तत्व गायत्री और सावित्री की ही संकल्पना है।

प्रातःकाल की संध्या में, सावित्री अवस्था में सूर्य की गायत्री दिन का निर्माण करती है, और संध्या समय वही सावित्री रात्रि का सृजन करती है।

कृष्ण भी सदैव सावित्री अवस्था में थे, और राम भी। यह वही अवस्था है — ब्रह्म और ब्रह्मा की अवस्था।

क्षेत्र और बीज, डिम्ब (भ्रूण) और नचिकेता।

भारत में संन्यास परंपरा की एक दिव्य वंशावली रही है। संन्यासी भी सदैव सावित्री अवस्था में स्थित रहते हैं। लोग उनके समक्ष बैठते थे, और जो भी वे कहते, वह घटित होता था। यदि कोई उनके सामने क्रोध करता, तो वह स्वयं को हानि पहुँचाता। और यदि कोई उनके समक्ष अपने विचार, वाणी और कर्म में शुभता प्रदर्शित करता, तो फल भी उसी अनुरूप मिलते थे।

अपनी गायत्री के माध्यम से ही व्यक्ति अपना भाग्य स्वयं रचता है।

वैदिक ब्राह्मणों की भी यही स्थिति होती है — वे भी ऋतुम की अवस्था में रहते हैं।
ऋतुम का अर्थ है — प्रकृति के साथ सामंजस्य।

इसी कारण श्रीकृष्ण कहते हैं — "ब्राह्मणों का कभी अपमान मत करना, अन्यथा
संकट उत्पन्न होगा।"

प्रकृति — यही ऋतुम — ही सनातन ग्रंथों में "सत्य" के रूप में मानी गई है।

इसीलिए प्रकृति को नमन करना हमें आरंभ से ही सिखाया गया है।

हम वट पूर्णिमा जैसे पर्व मनाते हैं, शनिवार को पीपल वृक्ष के नीचे दीपक जलाते
हैं।

हम नदियों की पूजा करते हैं।

श्रावण पूर्णिमा के दिन — जिसे नारियल पूर्णिमा कहा जाता है — हम समुद्र की
भी पूजा करते हैं और नारियल अर्पण करते हैं।

क्योंकि स्वयं प्रकृति भी सावित्री अवस्था में स्थित है — जैसे बीज बोए जाते हैं, वैसा
ही फल प्रकृति प्रदान करती है। बबूल बोने वाला आम की अपेक्षा कैसे कर सकता है?

यदि आप प्रकृति का सम्मान करते हैं, तो प्रकृति आपकी रक्षा करेगी — क्योंकि आप
स्वयं भी प्रकृति का ही एक अभिन्न अंश हैं।

आपका जन्म भी ब्रह्मचर्य के स्वभाव में ही हुआ है —

चरैवेति, चरैवेति।

इसलिए कहा गया है —

"धर्मो रक्षति रक्षितः" —

जो धर्म की रक्षा करता है, उसकी स्वयं धर्म रक्षा करता है।

ब्रह्मचर्य अखण्डमण्डलाकार है। ब्रह्मा की ब्रह्म में, अखण्डमण्डलाकार में, यात्रा है। हमने अब तक ब्रह्मचर्य को एक सतत ऊर्जा प्रवाह और सृष्टि की निरंतरता के रूप में समझा है। हमने यह भी जाना कि इस पथ पर वीर्य की रक्षा कितनी आवश्यक है। अब हम इस बात पर गहराई से विचार करेंगे कि यह अमूल्य शुक्र, या वीर्य, कहाँ और क्यों कमजोर होता है, और किन कारणों से इसका तेज क्षीण होता है।

जैसा कि हमने चर्चा की, वीर्य तीन मुख्य गुणों को धारण करता है: सत्, रज और तम। इन्हें क्रमशः सूर्य बल, चंद्र बल और शनि बल या फिर सुवर्ण (सोना), रजत (चांदी) और लौह (लोहा) तत्व के रूप में भी समझा जा सकता है। ये तीनों तत्व मिलकर एक व्यक्ति के स्वभाव और चरित्र का निर्माण करते हैं।

जब सुवर्ण और रजत तत्व (सूर्य बल और चंद्र बल) एक-दूसरे के बहुत करीब आते हैं या उनमें एकाग्रता बढ़ जाती है, तो मनुष्य अत्यधिक भावुक, संवेदनशील और कलात्मक हो जाता है। ऐसे व्यक्ति अक्सर भावनाओं में बह जाते हैं और उनका मन अस्थिर हो सकता है।

वहीं, जब लौह और सुवर्ण तत्व (शनि बल और सूर्य बल) का मिश्रण होता है, तो व्यक्ति में कामुकता और इच्छाओं का प्रबल प्रवाह होता है। ये लोग बहुत महत्वाकांक्षी और कामनाओं से भरे होते हैं। उनकी ऊर्जा भौतिक सुखों और उपलब्धियों को प्राप्त करने में केंद्रित हो जाती है, जिससे आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग बाधित होता है।

आदर्श स्थिति तब होती है जब ये तीनों तत्व—सत्, रज और तम—संतुलित और सटीक अनुपात में होते हैं। इस संतुलन से व्यक्ति एक रोल मॉडल बनता है। वह केवल शारीरिक रूप से मजबूत नहीं होता, बल्कि मानसिक रूप से स्थिर, भावनात्मक रूप से परिपक्व और आध्यात्मिक रूप से जागृत भी होता है। यह तीनों तत्वों का सामंजस्य ही उसे एक पूर्ण और अनुकरणीय व्यक्तित्व बनाता है।

गर्भाधान के समय, वीर्य की गुणवत्ता और उसके भीतर के इन तीन तत्वों का संतुलन बच्चे के पूरे जीवन को प्रभावित करता है। यदि गर्भाधान की प्रक्रिया में कोई भी बाधा या 'अड़चन' नहीं होती, तो बालक **आजीवन स्वस्थ** और संतुलित रहता है। इसका अर्थ है कि न केवल माता-पिता का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य उत्तम हो, बल्कि उस क्षण का वातावरण, विचार और इरादा भी अत्यंत शुद्ध और शांत हो।

इसके विपरीत, यदि गर्भाधान के समय कोई 'अड़चन' होती है—चाहे वह मानसिक अशांति, शारीरिक कमजोरी, या असंतुलित ऊर्जा के कारण हो—तो बालक में जीवनभर इन **उपर्युक्त रंगों** का प्रभाव दिखाई देता है। वह समय-समय पर अत्यधिक भावुक (रजत-सुवर्ण का प्रभाव) या अत्यधिक कामुक और इच्छाओं से भरा (लौह-सुवर्ण का प्रभाव) हो सकता है। ये अड़चनें उसके स्वभाव, व्यवहार और यहाँ तक कि स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं।

सूर्य बल से ही व्यक्ति में सत् और असत् की शक्ति आती है। यही शक्ति उसे सही और गलत के बीच अंतर करने, और अपने कर्मों का चुनाव करने में सक्षम बनाती है। रजोगुण, जो क्रियाशीलता और महत्वाकांक्षा का प्रतीक है, वह मनुष्य के विकास के लिए अनिवार्य है। एक डाकू **वाल्मीकि** तक बन सकता है। मनुष्य एकमात्र ऐसा प्राणी है जिसने अपने लिए एक **‘यम’**, एक **संविधान**, **धर्म** की एक ऐसी सूची बनाई है जो स्वयं पृथ्वी के धर्म के अनुरूप है।

यही कारण है कि इतने सारे संप्रदायों और जीवन-पद्धतियों का गठन हुआ है। हर एक ने अपनी समझ और सोच के अनुसार यह प्रयास किया है कि मनुष्य प्राणी इस धरा पर सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सके। जीवन जीने के इन नियमों को ही **कर्म की सूची** कहा गया है। इन नियमों का पालन करके ही हम पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर घूमने और अपनी धुरी पर घूमने की गति (Rotation and Revolution) के साथ तालमेल बिठा सकते हैं, और उसी के अनुसार जलवायु तथा पर्यावरण की रचना के साथ सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं।

परंतु, प्रश्न यह विचार मन में आता है कि पशु तो निर्विघ्न जीवन जीते हैं, उनके लिए किसी संविधान की रचना क्यों नहीं की गई?

कुत्ते और बिल्लियाँ जैसे पशु, शौच आदि के बाद अपने मूत्र और गुदा मार्ग का भी प्रक्षालन (सफाई) नहीं करते, फिर भी वे हमारे घरों में, यहाँ तक कि ड्राइंग रूम और बेडरूम में भी शोभा बढ़ाते हैं। तो फिर मनुष्य पर ही यह दबाव क्यों?

इसका एक गहरा और मौलिक कारण है: मनुष्य **गुरुत्वाकर्षण (Gravitational) शक्ति** के विरुद्ध दो पैरों पर चलता है। यह एक साधारण क्रिया नहीं है, बल्कि यह एक महान आध्यात्मिक और भौतिक चुनौती है। जब हम दो पैरों पर खड़े होते हैं, तो हमारी रीढ़ सीधी होती है, और हमारा गुरुत्व केंद्र ऊपर की ओर होता है। यह स्थिति हमें न केवल भौतिक रूप से ऊंचा उठाती है, बल्कि यह हमारे शरीर के आंतरिक तंत्र को भी गुरुत्वाकर्षण के विपरीत दिशा में काम करने के लिए मजबूर करती है।

इस ऊर्ध्वगामी स्थिति का सीधा संबंध हमारे वीर्य और जीवन ऊर्जा से है। गुरुत्वाकर्षण की शक्ति ऊर्जा को नीचे की ओर खींचती है, जबकि मनुष्य की सीधी मुद्रा इस ऊर्जा को ऊपर की ओर, मस्तिष्क और चेतना की ओर प्रवाहित करने का अवसर प्रदान करती है। यही कारण है कि मनुष्य को अपने आंतरिक और बाह्य जीवन को संतुलित रखने के लिए अनुशासन और धर्म की आवश्यकता है। पशु अपने स्वाभाविक गुरुत्वाकर्षण-अनुकूल स्थिति में रहते हैं, जबकि मनुष्य को अपने शारीरिक और आध्यात्मिक संतुलन को बनाए रखने के लिए लगातार प्रयास करना पड़ता है।

जब हम रजोगुण की बात करते हैं, तो यह केवल क्रियाशीलता नहीं है, बल्कि यह वह ऊर्जा है जो व्यक्ति को संतुलित और गतिशील बनाए रखती है। इस रजोगुण में कमी कई रोगों को आमंत्रित करती है, क्योंकि शरीर का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाता है।

एक रोचक विचार यह है कि जब व्यक्ति बहुमंजिला इमारतों में अपना घर बनाता है, तो उसका सारा ध्यान और रजोगुण का प्रवाह उस ऊँचाई को संतुलित करने में लगा रहता है। यही कारण है कि प्राचीन शास्त्रों में यह सलाह दी गई है कि वृक्षों की ऊँचाई

से अधिक ऊपर आवास नहीं बनाना चाहिए। यह सिर्फ एक भौतिक नियम नहीं, बल्कि एक ऊर्जात्मक सिद्धांत है, जो हमें प्रकृति की लय से जोड़े रखता है।

वीर्य का मूल स्वभाव अपने विपरीत योनि (स्त्री के स्राव) की ओर आकर्षित होना है। दूसरे शब्दों में, वीर्य योनि के स्राव में आकर्षित होता है। जब वीर्य में रजोगुण कमजोर होता है, तो तमोगुण सतोगुण पर हावी हो जाता है। सतोगुण इसलिए कमजोर होता है क्योंकि मनुष्य पृथ्वी के नियमों (यम) की अनदेखी करता है। शास्त्रों में दाँत साफ करने की विधि (दन्त धावन विधि) का भी वर्णन है, जिसमें यह बताया गया है कि किस दिशा की ओर मुख करके बैठकर मुख प्रक्षालन करना है। सूर्य सिद्धांत नामक ग्रंथ पलक झपकने के, या निमिष के भी 3750वें भाग की बात करता है, जो इस बात का संकेत है कि हमारे हर छोटे से छोटे कर्म का ब्रह्मांडीय नियमों के साथ गहरा संबंध है।

जब इस कमजोर रजोगुण वाले वीर्य में प्रसूता स्त्री, मासिक धर्म वाली स्त्री या श्वेत प्रदर जैसी बीमारियों से ग्रस्त स्त्री की योनि का स्राव प्रवेश कर जाता है, तो यह शरीर में चांदी की बारीक बूँद जैसी एक गाँठ बना देता है। यदि यह स्त्री उस पुरुष के बीज को धारण करती है, तो कठिनाई और भी बढ़ जाती है, क्योंकि यह गाँठ जन्म लेने वाले शिशु में भी रजोगुण की कमी का कारण बन सकती है।

इसीलिए, भारतीय धर्मशास्त्र स्त्रियों को श्मशान भूमि या अंत्येष्टि स्थल पर जाने की अनुमति नहीं देते, क्योंकि स्त्रियाँ ग्रहणशील होती हैं। यदि किसी स्त्री में पुरुष का वीर्य स्थापित हो, तो वह मृत शवों, प्रेतों और मृत शरीरों के सूक्ष्म कणों को भी आकर्षित कर सकती है। विवाह के बाद, पुरुष का वीर्य स्त्री में स्थापित होता है और वह उसी के अनुरूप आचरण करने लगती है। यह इसलिए होता है क्योंकि पुरुष के जल अणु उसके विचारों से चार्ज रहते हैं, और जिस स्त्री से वह संसर्ग करता है, वह उन्हीं विचारों के अनुरूप व्यवहार करने लगती है। भले ही अभिव्यक्ति का तरीका अलग हो, अभिप्राय वही होता है। यही कारण है कि एक पुरुष को समझना उसकी स्त्री के माध्यम से सरल है।

इस प्रकार जब बाहरी तत्व—चाहे वे पशुओं के हों, मनुष्यों के हों, मृत शरीर के हों या जीवित के—हमारे रजोगुण को छीन लेते हैं और हमारे जीवन में बाधाएँ उत्पन्न करते हैं, तो हमारा प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाता है, और हम अपने आध्यात्मिक मार्ग से विचलित हो जाते हैं।

वीर्य की गति का रहस्य केवल शरीर की क्रियाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ब्रह्मांड की महान लय से जुड़ा है। ग्रंथों में दो महत्वपूर्ण गतियों का वर्णन है: **दक्षिणायन** और **उत्तरायण**। ये न केवल सूर्य की वार्षिक यात्रा को दर्शाते हैं, बल्कि जीवन की दो मूलभूत शक्तियों और ज्ञान के दो अलग-अलग स्रोतों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।

दक्षिणायन की यात्रा दंड नीति पर चलती है, जिसके गुरु असुरों के आचार्य **शुक्राचार्य** हैं। उनकी नीति का आधार शक्ति है, क्योंकि दक्षिण दिशा पृथ्वी के गर्भ की ओर इंगित करती है। जब सूर्य दक्षिणायन होते हैं, तब हमें **गुह्य ज्ञान** की प्राप्ति होती है। यह वह ज्ञान है जो पृथ्वी के भीतर, उसके गर्भ से आता है। यह शक्ति का, जड़ का और अस्तित्व के गहरे रहस्यों का ज्ञान है।

जिस तरह एक फूल जब खिलता है, तो वह केवल ऊपर की ओर नहीं बढ़ता, बल्कि वह पृथ्वी के गर्भ से कई तत्वों को बाहर निकालता है—जैसे कि शक्कर, प्रोटीन, और लिपिड। साथ ही, मैग्नीशियम, कैल्शियम, लौह, तांबा और मैंगनीज जैसे महत्वपूर्ण तत्व भी बाहर आते हैं। पानी का मिट्टी के साथ मिलकर प्रतिक्रिया करना ऐसे रसायन (chemicals) बनाता है जिनसे रंग और सुगंध का निर्माण होता है। यह सब पृथ्वी के भीतर से आया हुआ गुह्य ज्ञान है।

भगवान कृष्ण भी इसी तरह पाताल का गुह्य ज्ञान देते हैं। पाताल, जिसे नागलोक भी कहते हैं, वह स्थान है जहाँ "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का नियम चलता है—यह एक ऐसी जगह है जहाँ प्रकृति का कच्चा और अप्रतिबंधित बल सबसे अधिक सक्रिय होता है। यह ज्ञान वीर्य के लौह तत्व से जुड़ा है, जो व्यक्ति को भौतिक दुनिया में शक्ति और इच्छाशक्ति देता है।

वहीं, उत्तरायण की यात्रा **ईशान कोण** की ओर है। इसके गुरु **बृहस्पति** हैं, जो देवों के गुरु हैं। यह यात्रा आध्यात्मिक उत्थान, विवेक और चेतना की दिशा को दर्शाती है। यह वह ज्ञान है जो हमें प्रकाश और दिव्य चेतना से जोड़ता है।

जब हम पूजा में फूलों का उपयोग करते हैं और बाद में उन्हें नदी में विसर्जित कर देते हैं, तो हम एक प्राचीन चक्र का सम्मान करते हैं। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि उन फूलों के आवश्यक तत्व, जो पृथ्वी के गर्भ से आए हैं, वापस उसी में मिल जाएँ। यह चक्र—उत्पत्ति, अभिव्यक्ति और पुनः विलय—जीवन का एक शाश्वत नियम है।

यह चक्र जीवन का भी हो, यही **ब्रह्मचर्य** है। ब्रह्मचर्य केवल ऊर्जा को संरक्षित करना नहीं है, बल्कि उसे सही दिशा में प्रवाहित करना है, उसे वापस स्रोत में लौटाना है ताकि वह जीवन के चक्र को जारी रख सके। जब वीर्य के तत्व—लौह, रजत और सुवर्ण—इस प्राकृतिक चक्र के साथ सामंजस्य बिठाते हैं, तभी व्यक्ति अपने जीवन का पूर्ण उद्देश्य प्राप्त कर पाता है।

शरीर का तेज मुख्यतः **प्रेत कणों (particles)** से क्षीण होता है। 'प्रेत' का अर्थ मृत शरीर (शव) से है। जब किसी कारणवश मृत व्यक्ति के कण जीवित शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तो उन कणों को जीवित शरीर से निकालना अत्यंत कठिन हो जाता है। ये कण शरीर के जिस भी स्थान में बैठते हैं, वहाँ **आत्मा का प्रकाश** बाधित होता है।

फिर, ये कण अपना भूतकाल (past) स्वयं प्रकट करते हैं। इस प्रकार के कणों से पीड़ित व्यक्ति भयभीत हो जाता है, और जब वह उन्हें निकालने का प्रयास करता है, तो ये कण शरीर में अपनी जगह बदल लेते हैं। इसी प्रेत कण को **भूत** भी कहा गया है। ये कण उत्पत्ति (creation) में बाधक होते हैं और पीड़ित व्यक्ति को सदैव भूतकाल के विचारों में ही रखते हैं। ऐसे मनुष्य 'एस्केपिस्ट' या **पलायनवादी** हो जाते हैं।

इस आंतरिक कुंठा (frustration) के कारण व्यक्ति कोई ऐसी गतिविधि लगातार करता रहता है जिसका उस समय, उम्र और स्थान के हिसाब से कोई महत्व नहीं होता। जब ये प्रेत कण शरीर में एक ही स्थान पर लंबे समय तक स्थापित रहते हैं, तब ये **भूत कण**

पिशाच कण में बदल जाते हैं और व्यक्ति के रक्त प्रवाह को बाधित करते हैं। इसके परिणामस्वरूप, व्यक्ति का शरीर सफेद हो जाता है।

इस समस्या के समाधान के लिए **रामचरितमानस**, **सुंदरकांड**, **हनुमान चालीसा** और **हनुमान बाहुक** जैसे पाठों का गठन हुआ है। रामचरितमानस की रचना आचार्य तुलसीदास ने अपनी पत्नी के वियोग में **अधो रेतस** की स्थिति में की थी। यह रचना जग में विवाहितों के लिए हितकर हुई है। ये पाठ, केवल श्रवण मात्र से ही ऐसी बाधाओं को दूर कर देते हैं।

भारत के सभी शास्त्र प्रत्येक कार्य की **फलश्रुति** का वर्णन करते हैं। 'भ' अक्षर का अर्थ भी यही है, जो '**तम रहित हो**', उज्ज्वल और प्रकाशवान हो। इसीलिए अपने देश का नाम '**भारत**' पड़ा, जिसका अर्थ है 'भ' में रत, यानी **ज्ञान में रत**।

जैसा कि हमने जाना, आत्मा की उत्पत्ति दही को मथने से मक्खन निकलने की तरह होती है। उसी प्रकार, पृथ्वी के घूमने के कारण स्त्री के शरीर में माता की आत्मा से शिशु की आत्मा उत्पन्न होती है। इसी तरह, जल को मथने से जल तत्व में छिपे आकाश, वायु और अग्नि तत्व प्रकट होते हैं, और अंत में कीचड़ की उत्पत्ति होती है।

कर्दम ऋषि की ही पुत्री **अनसूया माता**, अत्रि ऋषि की पत्नी थीं, जिनसे दुर्वास, दत्तात्रेय और चंद्रमा की उत्पत्ति हुई है। इसीलिए कहा गया है कि अत्रि ऋषि ने **सप्त ओजोन परतें** बनाई ताकि पृथ्वी पर उत्पत्ति संभव हो सके।

स्त्रियों को कमल की संज्ञा दी गई है, क्योंकि कमल भी कीचड़ - **कर्दम** में ही खिलता है। चंद्रमा की शीतल किरणों से, जो **अत्रि नंदन** हैं, पृथ्वी में अन्न की उत्पत्ति होती है। दुर्वास ऋषि के शाप से कृष्ण भी नहीं बच सके, और आज भी द्वारका क्षेत्र में दुष्काल (अकाल) है। दत्तात्रेय तीनों गुणों की अभिव्यक्ति हैं: चंद्र गुण (रजत), शनि गुण (लौह), और सूर्य गुण (सुवर्ण)। इसीलिए उन्हें **गुरु दत्तात्रेय** की उपाधि दी गई है।

यह रजोगुण में स्थित आत्मा नाभि में स्थापित होती है और पूरे शरीर को प्रकाशित करती है। यह ऊर्जा प्रदान करती है, जिससे सभी अंग और तंत्र सुचारू रूप से कार्य करते हैं। शिव पुराण में इसका वर्णन है कि शिवलिंग इतना दिव्य है कि ब्रह्मा इसकी ऊँचाई और विष्णु इसकी गहराई नहीं नाप सके।

यह त्रिकोण प्रदान करने वाली आत्मा, सत्, रज और तम गुणों के साथ शरीर के मध्य में स्थित होकर दाएँ, बाएँ और मध्य भाग को प्रकाशित करती है। इस गुणातीत आत्मा से लिप्त होकर ही आपके अपने गुण प्रकट होते हैं।

परंतु, प्रश्न यह है कि यह आत्मा स्त्री और पुरुष में भेद कैसे कर पाती है? यह एक गहरा रहस्य है जिसका उत्तर हम खोजने का प्रयास करेंगे।

पृथ्वी की गति के कारण जब एक सीमा के बाद आत्मा विभाजित (split) होती है, तो वह दो भागों में बँट जाती है। एक भाग से कुछ निकलता है और दूसरा भाग बनता है। जिस भाग से यह निकला, उसमें उतनी ही रिक्तता उत्पन्न हो जाती है और वह पूँछ (tail) जैसा दिखाई देने लगता है। दूसरा भाग भी बनता है, जो निकले हुए हिस्से के टूटने के बल के कारण वेग से आगे बढ़ता है और उसमें एक शिखा (head) बन जाती है। उदाहरण के लिए, शुक्राणु में पूँछ होती है और इसी शुक्राणु को उल्टा कर दें तो उसमें शिखा होती है।

जिससे यह विभाजन हुआ है, वह उसकी तलाश में भटकता है। इसीलिए स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पूरक होते हैं। जिस शरीर में आत्मा पानी की बूँद की तरह नाभि में सुशोभित होती है, जिसकी शिखा ऊपर की तरफ होती है, वह शरीर स्त्री का हो जाता है। और जिस शरीर में पूँछ नीचे की तरफ होती है, जैसे उल्टी पानी की बूँद, वह शरीर पुरुष का हो जाता है। इसीलिए दिमागी कार्य पुरुष के क्षेत्र (domain) में और गर्भ धारण करने का कार्य स्त्री के क्षेत्र में होता है।

जब सूर्य में विस्फोट हुआ, तब पृथ्वी जन्मी। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करने लगी, ठीक वैसे ही जैसे बच्चा माँ की परिक्रमा करता रहता है। और पृथ्वी में विस्फोट से चंद्रमा

प्रकट हुआ और उसी सीमित गुरुत्वाकर्षण में अपनी परिधि में भ्रमण करने लगा। **बरमूडा ट्रायंगल** इसी बात का साक्षी है कि पृथ्वी से चंद्रमा प्रकट हुआ है। इसीलिए जब बच्चा माता से दूर चला जाता है, तो माँ का स्वास्थ्य और मनोदशा रुग्ण (बीमार) हो जाती है।

यह ब्रह्मचर्य का सिद्धांत पानी से ही संबंधित है। आप अपने शरीर की ओर ध्यान दें: नाभि के ऊपर एक मुख और दो हाथ, और नाभि के नीचे जननांग और दो पैर। यह शुक्राणु का ही तो विस्तार है। नारियल को भी आप देखें: तीन बिंदु और एक शिखा। यह भी शुक्राणु के विस्तार का ही एक रूप है। इसीलिए जल को **छंद** भी कहा गया है।

नचिकेता, जो यज्ञ-नारायण से जन्मता है, उसकी अनगिनत शौर्य गाथाएँ हैं। हर एक जन्म नवीन है। किसी भी वृक्ष में आप जाएँ, पत्तियाँ एक-दूसरे से नहीं मिलतीं। उसी तरह, किसी के भी फिंगरप्रिंट एक-दूसरे से नहीं मिलते। पृथ्वी के परिभ्रमण का असर सभी पर है। नचिकेता को अगर पृथ्वी के धर्म के अनुरूप ढाला जाए तो ही **ब्रह्मचर्य सिद्ध** होता है। हर पिता का प्रयास यही होता है।

जल से निर्मित इस देह को दूषित न होने दें। सप्त धातुओं का निर्माण आपके खाए हुए अन्न से होता है और अन्न के कण आपके विचारों से चार्ज हो जाते हैं। किसी को शाप देना हो तो भी जल को अभिमंत्रित करना पड़ता है। और किसी को आशीर्वचन देना हो तो भी मंत्रों से ही जल को चार्ज करना पड़ता है। युद्ध भूमि में जब कृष्ण ने कर्ण से उसका पुण्य देने को कहा, तब कर्ण ने अपने रक्त से संकल्प लिया था। तभी से **रक्तदान** की प्रथा चली है। रक्तदान पितरों के लिए, या यूँ कहें कि पितरों को पुण्य का दान, उन्हें आगे की गति प्रदान करता है।

सात रसों की स्वामिनी को **सरस्वती** कहते हैं। सारे रसों की वती (स्वामिनी) सरस्वती। **पुष्ट धातु और सतत गतिशील** होना ही ब्रह्मचर्य है। जैसे शरीर में प्राणों का सतत संचार, अन्न का पाचन, रक्त का शुद्धिकरण इत्यादि। व्यक्ति नहीं थकता, परंतु मन थक जाता है। इन **नौ द्वारों** को ही मन कहा गया है। सात द्वार मुख मंडल में हैं और दो द्वार

नाभि के नीचे हैं। स्त्रियों में दसवाँ द्वार बाहर होता है, जबकि पुरुषों में दसवाँ द्वार अंदर होता है।

पुरुषों को तप के माध्यम से उत्पत्ति करना ऋतम् कहा गया है, और स्त्रियों के लिए गर्भधारण और प्रसूति के माध्यम से उत्पत्ति करना कर्तव्य कहा गया है। यह दसवाँ द्वार आत्मा की नाभि में उपस्थिति के अनुरूप गढ़ा गया है। इसीलिए पुरुष अंतर्मुखी और स्त्री बहिर्मुखी प्रतिभा रखती है।

रूप बदलते हैं। रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मज्जा, मज्जा से मेद, मेद से वीर्य, वीर्य से ओज की गाथा को यहीं पूर्णविराम दिया गया है।

आगे भी यात्रा है। इस विचार को आप अपनी साधना के अनुरूप आगे बढ़ाएँ।

केशव, अर्जुन से कहते हैं, "मैं तेरे सारे जन्मों (रूपों) को जानता हूँ।"

इस प्रकार, मानव जीवन एक आध्यात्मिक आरोहण द्वारा चिह्नित है—जो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण खिंचाव से चेतना की उच्च पुकार तक है। यह आरोहण गर्भ में, आत्माओं के रहस्यमय नृत्य में शुरू होता है, और मुक्ति के लिए एक खोज के रूप में पूरे जीवन जारी रहता है।

कर्ता, कर्म और कार्य

जब कोई व्यक्ति अस्तित्व की अवस्था (**being mode**) में होता है, तो वह कर्म के बंधन में नहीं पड़ता। कर्ताओं को अपने कार्य के परिणामों के प्रति सतर्क रहना पड़ता है। पूरा ब्रह्मांड अस्तित्व की स्थिति में है। संन्यास का पूरा प्रयास इस अस्तित्व चक्र का हिस्सा बनना है। इसका मतलब ब्रह्मांड के साथ एक हो जाना नहीं है। व्यक्ति को अपने दो पैरों पर खड़ा होना पड़ता है, मनुष्य एक अपंग की तरह नहीं बैठ सकता, इसलिए हम अपने कर्मों के प्रति सतर्क रहते हैं।

उदाहरण के लिए, एक किसान खेत में बीज बो रहा है। खेत को **क्षेत्र** कहा जाता है और बीज बोने वाले व्यक्ति को **क्षेत्रज्ञ** कहा जाता है। यहाँ, बीज अस्तित्व की अवस्था में है और रहेगा। बीज कर्ता के रूप में नहीं हो सकता। जब बीज को पृथ्वी ग्रह की प्रकृति के अनुसार बोया जाता है तो क्रिया (**kriya**) होगी और फसल उगेगी। लेकिन बोने के लिए मनुष्य को शिक्षित होना पड़ता है कि बीज बोने का उसका कार्य प्रकृति के यम के अनुसार है और वही कर्म है, और उस कर्म के अनुसार मनुष्य फसल उगाएगा या प्राप्त करेगा।

अब यहाँ, जब खेत की बात आती है तो हम जानते हैं कि कई चीजें करनी होती हैं, जैसे जमीन की सफाई और मौसम के अनुसार बीज बोना आदि। यहाँ भी यही कहानी ऊपर बताई गई है। अब हम **डिंभ** को साफ करने के महत्वपूर्ण पहलू को देखेंगे, जिसमें शिशु तैयार होता है और जन्म लेता है और डिलीवरी के बाद भी वह **डिंभ** उसके शरीर के चारों ओर चिपका रहता है, और इससे छुटकारा न पाने के परिणाम क्या होते हैं। यदि आप इसका मंथन करते हैं, गहन चिंतन में संलग्न होते हैं, तो प्रश्न अनिवार्य रूप से उत्पन्न होंगे। कठिनाई इस बात में निहित है कि जो सुरक्षा कवच आप अपनी माँ के गर्भ से लेकर आए हैं, वह आत्मा से प्रकाशित होता है—लेकिन एक आत्मा से नहीं, बल्कि एक **दोहरी आत्मा** से, **दो आत्मा** से।

श्रावण जैसे पवित्र महीनों के दौरान, **कांवड़ यात्रा** जैसी तीर्थयात्राएँ होती हैं, जहाँ भक्त **बाबा बैद्यनाथ** जैसे पूज्य स्थलों पर पवित्र जल के बर्तन (**कांवड़**) ले जाते हैं। यात्रा के दौरान, हवा में "बॉम भोले, बॉम भोले" का उत्साही मंत्र गूँजता है। यह लोकप्रिय मंत्र, वास्तव में, मूल **बीज-मंत्र** "वम भोले" का एक **अपभ्रंश** है। इसमें, "**भोले**" शिव को संदर्भित करता है—जो निर्दोष, भोले-भाले हैं—जबकि "**वम**" अमृत बीज, आंतरिक अमृत और परिवर्तन के स्रोत-कोड की सूक्ष्म प्रतिध्वनि को वहन करता है।

ऋषियों की उदारता और दृष्टि देखें—उन्होंने एक सरल, फिर भी शक्तिशाली मार्ग कैसे पेश किया: केवल **वम** बीज का आह्वान करते हुए एक **शिवालय** में जल अर्पित करके, कोई भी सृष्टि और आत्म-साक्षात्कार की गहरी लय के साथ संरेखित होना शुरू कर देता है। यह मूल से एक सीधा धागा है, वैदिक अंतर्दृष्टि का एक आसवन है। सदियों के भाषाई नरमपन और सांस्कृतिक बदलाव के माध्यम से भी, परंपरा बनी रही है। एक मामूली सुधार, अपनी मूल नब्ज के प्रति एक पुनर्जागरण, बस यही आवश्यक है—और यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। जिस तरह पाचन शरीर में सचेत जागरूकता के बिना जारी रहता है, उसी तरह समागम और तीर्थयात्रा जैसे पवित्र कार्य भी बने रहते हैं, अक्सर पूरी समझ के बिना। लेकिन जब किसी को अंतर्निहित सिद्धांत का एक संकेत भी मिलता है, तो जीवन ही एक नया और पवित्र अर्थ लेना शुरू कर देता है।

जैसा कि आप उत्सुक लगते हैं, और मैं आप में गहरे ज्ञान की एक उत्साह महसूस करता हूँ, मुझे इस सूक्ष्म सत्य को साझा करने दें: **शिव** कोई और नहीं बल्कि **आत्मा** हैं—अंतरंग उपस्थिति, भीतर का शांत गवाहा। **आत्मा** बस है—यह कार्य नहीं करती है, फिर भी सभी कार्य इसकी उपस्थिति में उत्पन्न होते हैं। जब यह सार शरीर को छोड़ देता है, तो जो कुछ भी बचता है वह **शव**—एक लाश है। यह शिव, आत्मा की उपस्थिति है, जो जीवन को जीवंत करती है। इस प्रकार, "वम भोले" का जाप करना केवल एक देवता का आह्वान करना नहीं है—यह आंतरिक उपस्थिति को जगाना है, अस्तित्व के अमृत को जगाना है, और उस पवित्र शांति को याद करना है जो सभी गति को संभव बनाती है।

मंदिर में, इस तरह से अर्पित किए गए जल को **अमृत** (अमृत) के रूप में माना जाता है—जो जीवन का सार और अमरता का प्रतीक है। जल न केवल अनुष्ठान में बल्कि समागम के कार्य में भी आवश्यक है, जहाँ यह ऊर्जाओं के सूक्ष्म मंथन में मदद करता है। इस पवित्र विनिमय में, जल अमृत बन जाता है, क्योंकि एक आंतरिक समागम की स्थिति में **लिंगम** को इसे अर्पित करना गहरी इच्छाओं को पूरा करता है और देने और लेने के सर्किट को पूरा करता है।

समापन

दान की विरासत और आत्म-साक्षात्कार

सदियों से, भारत आध्यात्मिकता और उदारता की भूमि रहा है, एक ऐसा राष्ट्र जो तपश्चर्या और त्याग के सिद्धांतों पर खड़ा है। इस गहरी जड़ें जमा चुकी परंपरा ने **दान की संस्कृति** को बढ़ावा दिया है, जहाँ ज्ञान, संसाधन और करुणा साझा करना एक मूलभूत गुण है। यह परोपकार की भावना केवल एक आधुनिक आदर्श नहीं है; यह एक प्राचीन विशेषता है जो हमारे इतिहास के ताने-बाने में बुनी हुई है, जो हमारे राजाओं और लोगों के कार्यों में देखी जाती है।

हालाँकि, इस उदार प्रकृति ने एक विशिष्ट कमजोरी भी पैदा की है। हमारा इतिहास हमें **भस्मासुर की पौराणिक कथा** के माध्यम से एक शक्तिशाली सबक देता है। इस कहानी में, भगवान शिव ने अपनी दयालुता में, राक्षस भस्मासुर को एक शक्तिशाली वरदान दिया: अपने हाथ के स्पर्श से किसी को भी राख में बदलने की क्षमता। भस्मासुर, एक दुष्ट मन के साथ, तुरंत इस शक्ति का उपयोग स्वयं शिव के विरुद्ध करने की कोशिश करता है। केवल भगवान विष्णु के चतुर हस्तक्षेप से, मोहिनी नामक सुंदर अप्सरा के रूप में, भस्मासुर को खुद को राख में बदलने के लिए मजबूर किया जाता है।

यह कहानी हमारे राष्ट्र के इतिहास के लिए एक शक्तिशाली समानता रखती है। यह हमें याद दिलाती है कि जब हम दुष्ट मन वालों को अपना ज्ञान, अपने रहस्य, या अपने संसाधन देते हैं, तो हम अपनी ही उदारता से नुकसान उठाने का जोखिम उठाते हैं। लंबे समय से, भारत भगवान शिव की तरह रहा है, जो दुनिया को खुलकर देता रहा है, केवल यह हुआ कि उसकी सद्भावना का शोषण भस्मासुर की तरह व्यवहार करने वालों ने किया।

यही कारण है कि हमें स्वतंत्रता के पारंपरिक उत्सव से परे देखना चाहिए। यह **आत्म-साक्षात्कार का दिन** होना चाहिए, हमारे पिछले संघर्षों के वास्तविक कारणों पर विचार करने और अपनी परंपराओं में निहित शक्ति को पहचानने का क्षण होना चाहिए। हमें अपनी दान देने की सहज प्रकृति को स्वीकार करना चाहिए और साथ ही ज्ञान और आत्मरक्षा के महत्व को भी समझना चाहिए।

आत्म-साक्षात्कार की इस भावना में, हम अपनी प्राचीन परंपराओं के ज्ञान की ओर मुड़ सकते हैं। हम **भगवान विष्णु** का मार्गदर्शन ले सकते हैं, जो संरक्षण और व्यवस्था का एक प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व हैं। विष्णु सहस्रनाम या हमारे वैदिक ब्राह्मणों के लिए, पुरुष सूक्त का पाठ करना आत्मरक्षा के लिए और हमारे मूल मूल्यों को याद रखने का एक तरीका हो सकता है।

हम अपनी मूलभूत प्रकृति को नहीं बदल सकते हैं और न ही हमें ऐसा करना चाहिए। भारत हर पहलू में समृद्ध भूमि है, एक ऐसा राष्ट्र जो अपने परोपकारी हृदय के कारण महानता के लिए बना है। हालाँकि, हमें अपनी उदारता में बुद्धिमान होना सीखना चाहिए। इस दिन को आत्म-साक्षात्कार के दिवस के रूप में अपनाकर, हम अपने मूल्यों और अपने राष्ट्र की रक्षा करने के लिए खुद को सशक्त बनाते हैं, यह सुनिश्चित करते हैं कि हमारी दान की विरासत कमजोरी का नहीं, बल्कि शक्ति का स्रोत बने।

ब्रह्मचर्य की इस गाथा को यहीं पूर्ण करते हैं। आगे फिर किसी **अवकाश** पर।

पुस्तक का विवरण

क्या ब्रह्मचर्य केवल विवाह न करने या आजीवन संयम का अभ्यास है? क्या हमने अपने प्राचीन आध्यात्मिक ग्रंथों को अधूरा समझा है? इन सवालों का जवाब आपको इस पुस्तक में मिलेगा, जो भारतीय ज्ञान के एक सबसे शक्तिशाली और सबसे गलत समझे गए सिद्धांत को **प्रकृति के गहन वैज्ञानिक रहस्यों** के साथ जोड़कर पुनर्जीवित करती है: **ब्रह्मचर्य**।

यह पुस्तक हमें सिखाती है कि ब्रह्मचर्य केवल शारीरिक नहीं, बल्कि एक पूर्ण जीवनशैली है जो हमारी सृजनात्मक ऊर्जा को सहेजकर उसे आध्यात्मिक और सांसारिक सफलता के लिए निर्देशित करती है। यह हमें सृष्टि के चक्र को समझने और उसके साथ तालमेल बिठाने का ज्ञान देती है।

इस यात्रा में, आप जानेंगे:

- **गुरु कण की अवधारणा:** कैसे पिता द्वारा दिया गया शुक्राणु मात्र एक जैविक कोशिका नहीं, बल्कि ब्रह्मांडीय बीज है—जो 'ब्रह्मा', 'विष्णु' और 'महेश' के गुणों को धारण करता है।
- **गर्भ में दोहरी आत्मा की खोज:** गर्भ में बच्चे और माँ की आत्माओं का समागम कैसे एक अनोखी ऊर्जा को जन्म देता है, और कैसे यह जन्म से पहले ही व्यक्ति के स्वभाव को आकार देता है।
- **केचुली का विज्ञान:** जन्म के समय बच्चे से जुड़ी एक सूक्ष्म परत (**केचुली**) का क्या महत्व है, और अगर इसे ठीक से शुद्ध न किया जाए तो यह जीवन भर आंतरिक अशांति और अप्राकृतिक इच्छाओं का कारण कैसे बनती है।

- **आत्मा का विज्ञान: शिव ही हैं आत्मा:** कैसे "बॉम भोले" मंत्र का सही उच्चारण "वम भोले" है, और कैसे "वम" की ध्वनि अमृत तत्व को जागृत करती है। यह पुस्तक आपको सिखाती है कि कैसे **शिव ही आत्मा हैं**, और उनका जागरण ही जीवन का सार है।
- **ग्रंथियों का विज्ञान:** कैसे हमारे शरीर के तीन मुख्य ऊर्जा केंद्र (रुद्र, विष्णु और ब्रह्म ग्रंथि) हमारी रचनात्मक शक्ति की सुरक्षा करते हैं और कैसे इनका असंतुलन हमारे स्वास्थ्य और भाग्य को प्रभावित करता है।
- **उपनिषदों का गूढ़ अर्थ:** कठोपनिषद में यम का अर्थ 'मृत्यु' नहीं, बल्कि 'कानून' है, और कैसे यह कथा जीवन के आरंभ और ऊर्जा के रूपांतरण का रहस्य प्रकट करती है।
- **वीर्य की दिशा का विज्ञान:** कैसे दक्षिणायन और उत्तरायण की ब्रह्मांडीय गतियाँ हमारे शरीर के भीतर वीर्य के प्रवाह और ज्ञान की प्रकृति को प्रभावित करती हैं।

यह पुस्तक केवल पढ़ने के लिए नहीं है, बल्कि आपके भीतर छिपे उस खजाने को जागृत करने के लिए एक निमंत्रण है, जिसे हमारे ऋषियों ने सदियों पहले हमारे लिए सहेज कर रखा था। यह एक ऐसी यात्रा है जो आपको स्वयं को जानने, अपनी **आंतरिक ऊर्जा को नियंत्रित करने** और जीवन की हर गतिविधि में अपने **प्रकृतिक धर्म** का पालन करने के लिए प्रेरित करेगी।